शोधादर्श

45

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

8384

वैशाली (विहार) में श्री दिगम्बर जैन मन्दिर स्थित
भगवान महावीर की प्राचीन अतिशयकारी
२००० वर्ष प्राचीन गुप्तकालीन पाषाण प्रतिमा
{ वैशाली में बौना पोखर (तालाब) से प्राप्त }

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह - सम्पादक : श्री रमाकान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -४५

वीर निर्वाण संवत् २५२८ नवम्बर २००१ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण-कीर्तन : वर्द्धमान महावीर	श्री रमाकान्त जैन	१
२.	बुद्धघोष वर्णित महावीर कालीन इतिहासः कुछ रोचक तथ्य	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	८
३.	सम्पादकीय : यह कैसा अहिंसा वर्ष ?	श्री अजित प्रसाद जैन	१२
४.	तीर्थंकर महावीर के पुण्यमयी वचन का प्रतिरूप	डॉ. कामता प्रसाद जैन	१६
५.	श्रमण भगवान महावीर	पं. बेचरदास दोशी	१८
६.	महावीर का धर्म	श्री काका कालेलकर	१६
७.	आत्मजयी भगवान महावीर	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	२०
८.	विस्मृत हो रहा महावीर का पावन सन्देश	डॉ. परमानन्द जड़िया	२२
६.	महावीर का अपरिग्रह कितना ग्राह्य ?	डॉ. निजामुद्दीन	२३
१०.	क्रान्त दृष्टा : भगवान महावीर	साध्वीश्री मंजुला	२६
११.	भगवान महावीर चित्रावली	श्री अगरचन्द नाहटा	२७
१२.	भगवान महावीर विषयक पुरातत्वीय प्रमाण	प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी	३०
१३.	श्री भगवान महावीर का १६२ वर्ष पुराना सिक्का	श्री रमाकान्त जैन	३३
१४.	महामानव महावीर	डॉ. शशि कान्त	३४
१५.	वन्दना : हिंसा की अहिंसा को	डॉ. नेमीचंद जैन	३७
१६.	वर्द्धमान महावीर के जीवन-पथ के दीप स्तम्भ		३८
१७.	है महावीर जिसने अपना मन जीता है	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	३६
१८.	निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांजलि पर्व दीपावली	श्री अजित प्रसाद जैन	४०

१९. आधुनिक विश्व में अहिंसा की प्रासंगिकता — श्री दुलीचन्द जैन — ४३
२०. शोध सार : मध्यकालीन हिन्दी साहित्य
पर जैन दर्शन का प्रभाव — डॉ. बी. रमेश कुमार गादिया — ४८
२१. सिरि भूवलय — श्री रमाकान्त जैन — ५०
२२. जैन मूर्तिकला और कुछ विशिष्ट जैन प्रतिमाएं — डॉ. गुलाब चंद्र जैन — ५१
२३. समाधान मांगते प्रश्न : — श्री अजित प्रसाद जैन
प्रश्न श्री जमनालाल जैन के
समाधान जस्टिस श्री एम. एल. जैन द्वारा — ५५
श्री लालचंद जैन के प्रश्न — ५८
२४. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं — श्री रमाकान्त जैन — ५९
२५. चिन्तन कण :
सही निर्वाण-स्थली पावा कहाँ — श्री अजित प्रसाद जैन — ६०
जैन दर्शन और शास्त्र — श्री धन्यकुमार जैन — ६२
२६. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २०००-२००१ — श्री अजित प्रसाद जैन — ६३
२७. साहित्य सत्कार :
समग्र जैन चातुर्मास सूची; भारतीय दिगम्बर
जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय-मध्य प्रदेश;
श्री तारण तरण शब्द कोष; समाधि शतक;
जैन दर्शन की कहानियां; सर्वोदयी जैन धर्म
और उसकी मौलिकता; अचल गच्छ का इतिहास;
तपागच्छ का इतिहास; जैन तीर्थ मथुरा; भगवान
महावीर की परम्परा एवं समसामयिक संदर्भ, — श्री अजित प्रसाद जैन — ६६
ज्ञानायनी; स्वाध्याय पद संग्रह; 'प्रेरणा'
बाबू जय कुमार जैन स्मृति ग्रन्थ; जैन स्तोत्र
साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन; दो पल;
व्यंग्य तरंग; हम हिंदी, बोलें हिन्दी। — श्री रमाकान्त जैन
२८. समाचार विमर्शः — श्री अजित प्रसाद जैन
शिखर जी पहाड़ पर डकैतों द्वारा लूटपाट — ७४
महासभा ने महत्वपूर्ण निर्णय लिये — ७५
तीर्थंकर वाटिका; आचार्य प्रतिमाओं की स्थापना। — ७७
२९. समाचार विविधा : — ७८
महाराष्ट्र में भी अल्पसंख्यक मान्यता; भ. महावीर
विश्वविद्यालय की स्थापना; अब जैन मंदिर भी
सिमी के आतंकी घेरे में; देश में पहला राजकीय जैन संग्रहालय
३०. अभिनन्दन — ८०
३१. शोक संवेदन — ८१
३२. आभार — ८१
३३. शोधादर्शः पाठकों की दृष्टि में — ८२

मुद्रक : माहेश्वरी प्रिंटर्स, मोतीनगर चौराहा, लखनऊ, कम्प्यूटर कम्पोजिंग : शिवानी कम्प्यूटर्स, ऐश बाग स्टेशन रोड, लखनऊ

गुरुगुण–कीर्तन–

वर्द्धमान महावीर

इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए, आहुट्ठ
मासहीणे वास चउक्कमि सेसकम्मि, पावाए णयरीए,
कत्तियमासस्स किण्ह चउद्दसिए रत्तीए, सादीए नक्खते,
पच्चूसे, भयवदो महदिमहावीरो वड्ढमाणो सिद्धिंगदो,
तिसुविलोएसु भवणवासिय वाण विंतर जोयिसिय
कप्पवासियत्ति चउव्हिा देवा सपरिवारा दिव्वेण
गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण
चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं
अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण
महाकल्लाणपुज्जं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि।।१।।

— णिव्वाण भत्ति (निर्वाण भक्ति)

(**भावार्थ–** वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे काल के अन्तिम भाग में– उसका अन्त होने में साढ़े तीन मास कम चार वर्ष शेष रह जाने पर– पावा नगरी में कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में, प्रत्यूषकाल में, स्वाति नक्षत्र में भवगत् महति महावीर वर्धमान सिद्धि (निर्वाण) को प्राप्त हुए थे। उस उपलक्ष्य में त्रिलोक में निवास करने वाले भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष, कल्पवासी तथा चतुर्विध देव सपरिवार दिव्य गंध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य वस्त्र और दिव्य न्हवन से निरन्तर उनकी अर्चना, पूजा, वन्दना, करते हैं और उन्हें नमस्कार करते हैं। मैं भी उस परिनिर्वाण महाकल्याण पुंज की अर्चना, पूजा, वंदना करता हूँ और उन्हें नमस्कार करता हूँ।।)

वासाणूणत्तीसं पंचयमासे य वीस दिवसे य,
चउविह अणगारेहिं बारहहि गणेहि विहरंतो।
पच्छा पावाणयरे कत्तियमासे य किण्ह चोद्दसिए,
सादीए रत्तीए सेसरयं छेत्तुं णिव्वाओ।।
अमावसीए परिणिव्वाण पूजा सयल देविंदेहि कयाति।।२।।

— जय धवल

(**भावार्थ–** और (केवलज्ञान के उपरान्त) उन्तीस वर्ष, पांच मास और बीस दिन तक बारह गणों में संगठित चतुर्विध संघ के साथ विहार करने के पश्चात् पावानगर में कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के अन्तिम भाग में स्वाति नक्षत्र के रहते

शेष (अघातिया) कर्मों का छेदन करके वर्द्धमान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। उस उपलक्ष्य में अमावस्या को समस्त देवेन्द्रों ने मिलकर परिनिर्वाण पूजा की।)

जं रयणिं च समणे भयवं महावीरे कालगए जाव सव्व दुक्खप्पहीणे
तं रयणिं च णं नव मल्लइ नव लेच्छइ कासी–कोसलगा अट्ठारसवि
गणरायाणो अमावसीए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठविंसु गए से
भावुज्जोए दव्वुज्जोअं करिस्सामो।।३।।

— कल्पसूत्र

(**भावार्थ–** जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर सब दुःखों से रहित हो कालगत हुए अर्थात् उन्होंने निर्वाण लाभ किया उस रात्रि में नव मल्ल, नव लिच्छवि और काशी–कोसल आदि प्रदेशों के अट्ठारह गण राजाओं ने एकत्र होकर अमावस्या को प्रोषधोपवासपूर्वक निर्वाण पूजन की और यह कहकर कि भावज्योति का अवसान हो गया और अब हम उसके स्थान पर द्रव्य ज्योति ज्योतित करें, दीपमाला प्रज्ज्वलित की।)

पावापुर मज्झिहिं जिणेसु, वेदिणसह उज्झिवि मुत्ति ईसु।
चउसेह कम्मह करि विणासु, संपत्तउ सिद्ध णिवासु वासु।।
देवाली अम्मावस अलेउ, महोदेउ वोहि देवाहि देउ।
चउदेवणिकायहं अइमणुज्ज, अइंवि विरइय णिव्वाणपुज्ज।।४।।

— यशःकीर्ति

(**भावार्थ–** पावापुर मध्य मुक्तीश जिनेश्वर वर्द्धमान महावीर ने वेदनीय का उच्छेद कर, चौसठ कर्म प्रकृतियों का नाश कर सिद्धों के निवास को वास रूप में प्राप्त किया अर्थात् निर्वाण लाभ किया। उन देवाधिदेव महादेव की निर्वाण प्राप्ति के उपलक्ष्य में अमावस्या को दिवाली मनी, चारों निकाय के देवों और मनुष्यों ने वहाँ एकत्र होकर निर्वाण पूजा की।)

पावापुर वर वणे संपत्तउ, सत्त भेय मुणि गण संजुत्तउ।
तहिं तणु सग्गेविहाणें ठाइविं, सेसाइं वि कम्मइं विग्घाइवि।
कत्तिय मासि चउत्थइ जामइं, कसण चउद्दसि रयणि विरामइं।
गउ णिव्वाण ठाणे परमेसरु, तिल्लोकाहिउ वीरु जिणेसरु।।५।।

— विवुध श्रीधर कृत वड्ढमाणचरिउ

(**भावार्थ–** सत्यनिष्ठ मुनिगण के साथ पावापुर के श्रेष्ठ वन (उद्यान) में पहुँचे और वहाँ कायोत्सर्ग विधान से ठहरकर शेष कर्मों (अघातिया कर्मों) का घात कर कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि के चौथे प्रहर में त्रिलोकाधिपति परमेश्वर वीर–जिनेश्वर निर्वाण स्थान गये अर्थात् उनका निर्वाण हुआ।)

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे,
पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो,
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा।।६।।

— पूज्यपाद देवनन्दि

(भावार्थ— तदनन्तर पावापुर के बाहर कमलों से भरे सरोवर के मध्य में एक ऊँचे स्थान पर समस्त पापों का नाश करने वाले भगवान श्री वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव ने निर्वाण प्राप्त कर लिया, ऐसा प्रतीत हुआ।)

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादिनम्।।
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम्।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम्।।
नमस्ते वीतरागाय सर्वज्ञाय महात्मने।
याताय दुर्गमं कूलं संसारोदन्वतः परम्।।
भवता सार्थवाहेन भव्य चेतन वाणिजाः।
यास्यन्ति वितनुस्थानं दोष चोरैरलुण्ठिताः।।७।।

— रविषेण

(भावार्थ— जो स्वयं सिद्ध (कृतकृत्य) हैं और जो सभी भव्य जीवों के मनोरथ सिद्ध होने के उत्तम निमित्त हैं, जो प्रशस्त दर्शन, ज्ञान और चारित्र का प्रतिपादन करने वाले हैं, जिनके चरणकमलों की किरण रूपी केशर सुरेन्द्र के मुकुट से आश्लिष्ट हो रही है, उन तीनों लोकों के मंगलस्वरूप भगवान महावीर को मैं नमस्कार करता हूँ। दुर्गम संसार सागर के अन्तिम कूल (छोर) पर पहुँच गये वीतराग सर्वज्ञ महात्मा आपको नमस्कार है। आप जैसे सार्थवाह के नेतृत्व में भव्यजीव रूपी व्यापारी राह में दोष रूपी लुटेरों से लुटे बिना ही निर्वाणधाम को प्राप्त होंगे।)

श्रीसभायां समभ्येत्य श्रीवीरं जिननायकम्।
पूजयामास पूज्योयमस्तावीच्च पुनः पुनः।।८।।

— वादीभसिंह

(भावार्थ— जिननायक श्रीवीर (वर्द्धमान महावीर) की श्रीसभा (समवसरण) में आकर (इन्द्र ने) उनकी पूजा करके बार–बार स्तुति की थी।)

वर्धमानो महावीरो श्रीमान सिद्धार्थनंदनः।
त्वत्संस्तुतेः स्मृतेश्चापि विघ्नौघाः प्रलयं व्रजेत्।।९।।

— आर्यिका ज्ञानमती जी

(भावार्थ— श्रीमान् सिद्धार्थ के नन्दन वर्धमान महावीर तुम्हारी स्तुति करने और तुम्हारा स्मरण करने से विघ्न–समूह प्रलय को प्राप्त होता है।)

जय सार्थक नाम सुवीर नमो, जय धर्मधुरंधर 'वीर' नमो।
जय ध्यान महान तुरी चढ़के, शिव खेत लियो अति ही बढ़िके।।
जय देव महा कृतकृत्य नमो, जय जीवउधारन व्रत्य नमो।
जय अस्त्र बिना सब लोक जई, ममता तुमते प्रभु दूर गई।।१०।।

– मनरंगलाल

जय श्री वीर जिनेन्द्रचन्द्र, शत–इन्द्र वंद्य जगतारं।
सिद्धारथ–कुल–कमल अमल रवि, भव–भूधर पविभारं।।
गुनमनि कोष अदोष मोषपति, विपिन कषाय तुषारं।
मदन–कदन शिव–सदन पद नमित, नित अनमित यतिसारं।।
अन्तातीत अचिन्त्य सुगुन तुम, कहत लहत को पारं।
हे जग मौल 'दौल' तेरे क्रम, नमै सीस कर धारं।।११।।

– दौलतराम

श्री वीर–जिनेशा नमित सुरेशा, नाग–नरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वांछित पावै शर्म–वरा।।१२।।

– वृन्दावनदास

सिद्धारथ ताता जग विख्याता, त्रिसला देवी माय।
तिहां जग गुरु जनम्या, सब दुख विनस्या, महावीर जिनराय।।
प्रभु केइ दीक्षा, परहित शिक्षा, देइ संवत्सरी दान।
बहु कर्म खपेवा, शिव सुख लेवा, कीधा तपशुभ ध्यान।।१३।।

– जिनचंद यति

योगी करें स्तवन भाव भरे स्वरों से,
जो हैं सुसंस्तुत नरों, असुरों, सुरों से।
वे वर्धमान गतमान मुझे बचावें,
काटें कुकर्म मम मोक्ष विभो! दिलावें।।१४।।

– आचार्य विद्यासागर

पावापुरी धरती का कन कन
बन गया तीर्थ जन का पावन
हिल मिल कर तरु दल पत्र लता
प्रभु की समाधि यह रहे बता।।
बह चला भक्त जन का जो दल
नयनों में भर प्रभु छवि केवल
जय–जय से गूंजे भू–अम्बर
जय महावीर जय तीर्थंकर।।१५।।

– छैलबिहारी गुप्त (तीर्थंकर महावीर महाकाव्य)

जग की समस्त पीर, हरने को 'महावीर',
सत्य–शान्ति दूत बन, वसुधा पे आये थे।
त्याग द्वेष हिंसा को अहिंसक सुजन बनो,
पावन संदेश जन–जन मध्य लाये थे।।
धर्म का प्रकाश और, नाश हो कुरीतियों का,
निज उपदेश से ये, तथ्य समझाये थे।
एक ईश के ही अंश, मानव 'अबोध' सभी,
वर्ग–भेद त्याग जीव गले से लगाये थे।।१६।।

– दयानन्द जड़िया 'अबोध'

आप तपे पर छाया बांटी,
–क्या उपमा ऐसे फकीर की ?
–जयति–जयति जय महावीर की।
जिनका मन सद्गुण पहने है,
देह न इच्छुक रही चीर की।
जयति–जयति जय महावीर की।।१७।।

– ज्ञानवती सक्सेना

वीर, तेरी राह को यदि
विश्व सारा जान जाता,
मिट गए होते कलह सब,
शान्ति का वरदान पाता।।१८।।

– इन्द्रचन्द्र शास्त्री

निस्सीम देव ! सीमित वाणी,
यशगान न कुछ भी बन पाता।
श्रद्धालु विनत अन्तस् लेकिन,
जय बोल झुका शिर सुख पाता।।
जय जय जय जयवन्त सदा त्रिशला नन्दन।
जय जय जय जगवंद्यनीय शत शत वन्दन।।१९।।

– वीरेन्द्र

हिंसा से जलते प्रांगण में, करुणा का अमृत बरसाया।
दुखी विश्व को महावीर ने, समता का संदेश सुनाया।।
'मेरी बात सही वह झूठा' इस एकान्तवाद को तोड़ो।
स्याद्वाद का सार यही है, हठधर्मी से मुखड़ा मोड़ो।।
भाव–शुद्धि की करो तपस्या, और ढोंग का पल्ला छोड़ो।
सहनशीलता, क्षमा, त्याग से, टूटे हुए हृदय को जोड़ो।।

छोटा–बड़ा कौन है जग में, सब में सदृश आत्मा छाया।
दुखी विश्व को महावीर ने, समता का सन्देश सुनाया।।२०।।

– प्रसन्नकुमार सेठी

वीर तुमने अवतरित होकर धरा की थी अलंकृत।
वातमंडल को किया था, भव्य भावों से तरंगित।।
दश दिशा को कर दिया था, धर्म ध्वनि से परम झंकृत।
और मानव मात्र को तुमने बनाया था सुसंस्कृत।।२१।।

– प्रकाश चन्द्र

प्रिय प्राण धर्म को तुमने ही,
दी मृत्युंजय औषधि महान।
कर निर्विकार उसकी काया,
चिर जीवन का दे उसे दान।।
पाखण्डों में है धर्म कहाँ?
वह तो केवल आत्माश्रित है।
यह दिव्यघोष–फैला जग में,
तेरा हे वीर दया निधान।।२२।।

– पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ

करें आनन्दितमना हम, वीर विभु की वन्दना।
सिद्धि पाएं साधना कर, कर्म कन्द–निकन्दना।।
शान्ति अद्भुत है तुम्हारी, और अद्भुत ज्ञान है।
साम्य अद्भुत है तुम्हारा, और अद्भुत ध्यान है।।
अहो ! है सिद्धान्त अद्भुत, और अद्भुत साधना।
जागरण अद्भुत तुम्हारा, और तप आराधना।।२३।।

– मुनि श्री गणेशमल

नमो नमो हे 'सन्मति वाणी'
जग का उर आलोकित कर दे।
स्याद्वाद सिद्धान्त प्रकाशिनि
अनेकान्त निर्झर–रस भर दे।।
जन मानस अज्ञान तिमिर युत
ज्ञान सुधा से पूरित कर दे।
दर्शन–ज्ञान, अनन्त वीर्य सुख–
युत हो जावे ऐसा वर दे।।२४।।

– अनूपचन्द न्यायतीर्थ

करुणा–सागर पर–उपकारी, सत्य अहिंसा अवतारी।
सुधर्म–ध्वजधारी, जय महावीर नमो।
भक्त–उर–चन्दन वीर नमो।।

सन्मति के दाता, वर्द्धमान सुख–साता।
अखिल जग–त्राता, जय महावीर नमो।
'ज्योति'–मन–रंजन वीर नमो।।२५।।

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन 'ज्योति'

ज्योति ज्ञान की जगाई थी जिसने
राह मुक्ति की दिखाई थी जिसने
शान्ति का पाठ था जिसने पढ़ाया,
मानव को मानव बनना सिखाया जिसने

ऋणी हम उन महावीर प्रभु के
नवाते माथ अपना चरणों में उनके
सजाये ये दीपक 'रमाकान्त' ने यहाँ,
आलोकित करने जीवन और सिद्धान्त उनके।।२६।।

– रमाकान्त जैन

बुद्धघोष वर्णित महावीरकालीन इतिहास : कुछ रोचक तथ्य

– डॉ० ज्योति प्रसाद जैन

बुद्धघोष बौद्धधर्म के एक सुप्रसिद्ध महान् प्राचीन आचार्य थे। वह थेरवाद सम्प्रदाय के सबसे बड़े टीकाकार माने जाते हैं और उनका समय ईसा की ५वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है। उन्होंने अधिकांश बौद्ध आगम ग्रंथों पर अपने विद्वत्तापूर्ण भाष्य रचे और इस प्रकार उक्त आम्नाय में उनकी स्थिति प्रायः वही है जो जैन दिगम्बर सम्प्रदाय में स्वामी वीरसेन की तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में आचार्य हरिभद्रसूरि की। डॉ. विमलचरण लॉ ने अंग्रेजी भाषा में आचार्य बुद्धघोष की जीवनी तथा कृतियों पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ के छठे अध्याय में बुद्धघोष की बहुविज्ञता प्रदर्शित करते हुए लॉ महाशय ने उनकी बुद्धकालीन बौद्धेतर धर्मों और जातियों आदि सम्बन्धी जानकारी पर भी प्रकाश डाला है, जिससे विदित होता है कि बुद्धघोष ने अपने ग्रन्थों में, प्रसंगवश, महात्मा बुद्ध के समय में प्रचलित जैन, आजीवक आदि धर्मों; शाक्य, कोलिय, लिच्छवि आदि जातियों; राजगृह, वैशाली, श्रावस्ती आदि नगरियों के विषय में उपयोगी और दिलचस्प जानकारी प्रदान की है। इसमें क्या सन्देह नहीं कि उनके तत्सम्बंधी ज्ञान का आधार प्राचीन बौद्ध अनुश्रुति और साहित्य था, वह स्वयं भी अब से लगभग १५०० वर्ष पूर्व हो चुके हैं और उत्तर पूर्वीय भारत के ही निवासी थे। अस्तु, उनका उक्त कथन अधिकांशतः प्रामाणिक ही होना चाहिये और विशेषकर जबकि वह प्रतिपक्षी वर्ग व वर्गों के सम्बन्ध में है।

डॉ० लॉ के शब्दों में भाष्यकार (बुद्धघोष) वैशाली नगर से भली–भांति परिचित थे और वे उसके शासकों–लिच्छवियों के विषय में बहुत–सी उपयोगी जानकारी प्रस्तुत करते हैं। तपस्वियों के विविध सम्प्रदायों के इतिहास का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। वह आजीवकों और निर्ग्रंथों के तात्विक विचारों से भी सुपरिचित थे। मृत्यु के उपरान्त आत्मा का क्या परिणाम होता है, इस विवेचन में उन्होंने उक्त सम्प्रदायों के तत्सम्बंधी विचारों का भी उल्लेख किया है। 'विनय' और 'निकाय' ग्रन्थों में उल्लिखित विभिन्न धर्मोपदेष्टाओं के जीवनवृत्तों पर भी उन्होंने थोड़ा–थोड़ा प्रकाश डाला है।

बुद्धघोष के अनुसार, महावीरकालीन एक अन्य धर्म प्रवर्तक, पूरणकस्सप भी नग्न ही रहते थे और आजीवक सम्प्रदाय के प्रवर्तक मक्खलिगोशाल भी। पकुध कात्यायन शीतल जल का उपयोग नहीं करते थे, केवल गरम जल या चावलों के गरम मांड का ही उपयोग करते थे।

बुद्धघोष के कथनानुसार, श्रावस्ती नगरी में महारानी मल्लिका के उद्यान में एक भवन बनाया गया था (संभवतः महात्मा बुद्ध की व्याख्यान शाला)। इस भवन के आस–पास अन्य धर्मों के आचार्यों के लिये भी कितने ही भवन बन गये थे, किन्तु यह सब भवन समूह 'व्याख्यान भवन' के नाम से ही प्रसिद्ध था। इस स्थान में ब्राह्मण, निर्ग्रन्थ, अचेलक परिव्राजक आदि विभिन्न आचार्य मिलते थे, अपना–अपना मत प्रतिपादन करते थे और वाद–विवाद होता था।

'सुमंगलविलासनी' नामक ग्रंथ में (पृ. १३८–१३६) बुद्धघोष लिखते हैं कि म० बुद्ध के प्रमुख शिष्य देवदत्त ने उनसे यह प्रार्थना की थी कि वे संघ के नियम बहुत कड़े कर दें और यह आज्ञा प्रचारित कर दें कि भिक्षु लोग मांस–मच्छी को बिल्कुल न छुएं, केवल तीन वस्त्र अपने पास रक्खें, खुले मैदान में रहें (विहार आदि किसी मकान में नहीं), सदैव भिक्षा से अपना निर्वाह करें। किन्तु बुद्ध ने उसकी यह बातें नहीं मानी और फलतः देवदत्त संघ से अलग हो गया और अपने मत का स्वतंत्र प्रचार करने लगा। देवदत्त के बहकाने से ही कुणीक (अजातशत्रु) ने अपने पिता श्रेणिक पर अत्याचार किये बताये जाते हैं।

बुद्धघोष कहते हैं कि मल्ल लोग (महावीर कालीन एक व्रात्य जाति) क्षत्रिय थे और उनकी राज्य व्यवस्था राजाओं की गणतंत्र शैली की थी।

'खुद्दकपाठ' की अपनी टीका 'परमत्थजोतिका' में वह कहते हैं कि लिच्छवियों के देह की चर्म इतनी सुन्दर थी कि उसमें शरीर के भीतर की वस्तुएं झलकती थीं। एक दूसरे ग्रंथ 'धम्मपद अत्थ कथा' (भा. ३, पृ. ४६०) में वह बतलाते हैं कि लिच्छवियों के यहाँ एक बड़ा त्योहार होता था जो 'सब्बरत्तिवार' या 'सब्बरत्तिचार' कहलाता था। इस अवसर पर गीत गाये जाते थे, दुन्दुभि, मृदंग आदि अनेक वादित्र बजाये जाते थे, पताकायें फहराई जाती थीं। राजागण, राजकुमार, सेनापति सभी इस सार्वजनिक उत्सव में भाग लेते थे और रातभर आनन्द मनाते थे। स्त्रियां भी इसमें सम्मिलित होती थीं। 'धम्मपदअत्थकथा' ग्रंथ में यह भी उल्लेख है कि लिच्छवि लोग प्रायः उद्यान और वाटिकाओं में 'नगर शोभनियों' को साथ लेकर जाते थे।

'सुमंगलविलासनी' ग्रंथ में (पृ. १०३–१०५) इन्हीं लिच्छवियों के विषय में लिखा है कि जब कोई लिच्छवि बीमार पड़ जाता तो वे उसे देखने जाते थे, वे शील संयम का बहुत ध्यान रखते थे, बलात्कार आदि अपराध सुनने में भी नहीं आते थे। वे अपनी परम्परागत प्राचीन धार्मिक क्रियाओं को करते थे। किसी लिच्छवि के यहाँ यदि कोई मंगल कार्य होता तो सारी जाति, बिना किसी भेदभाव के उसमें सम्मिलित होती। जब कोई विदेशी राजपुरुष इनके देश में आता तो सब लिच्छवि मिलकर उसका स्वागत करने नगर से बाहर जाते और बड़े आदर सम्मान के साथ उसे लिवाकर लाते। अतिथि सत्कार के लिये वे प्रसिद्ध थे। किन्तु यदि कोई विदेशी शत्रु इनके देश पर

आक्रमण करता तो ये उसका डटकर बड़ी वीरता के साथ मुकाबला करते। लिच्छिवियों का संगठन आदर्श था। नवीन राज्यकरों के वे विरोधी थे, जो कुछ थोड़े से पुराने राज्यकर चले आते थे उन्हीं से संतुष्ट थे। ये वज्जिगण राजनीति में भी निपुण थे और अपने वयोवृद्ध अनुभवी देशवासियों के पास राज्य कार्यों व राजनीति की शिक्षा लेते थे। जब तब उनकी सार्वजनिक सभायें होती रहती थीं जिनमें देश के विविध प्रदेशों तथा अन्य राज्यकीय विषयों के सम्बंध में वाद–विवाद होते और जनता को उनसे अवगत कराया जाता था। ढोल पीटकर सभा के होने की घोषणा की जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति उपस्थित होने का प्रयत्न करता और सभा समाप्त होते ही सब तुरन्त अपने–अपने स्थान को चले जाते। लिच्छिवियों की इन सभाओं में राजकीय विषयों के अतिरिक्त, जनता की रुचि के अनुसार, अन्य लौकिक विषयों तथा धार्मिक प्रश्नों पर भी वाद–विवाद होते थे। एक समय बुद्ध के सिंह नामक एक शिष्य ने जब लिच्छवियों की इस महती सभा को देखा तो उसने कहा कि 'यदि तथागत को इस सभा में धर्म प्रचार करने का अवसर मिल जाय तो वह अत्यन्त प्रसन्न होंगे।' धर्म प्रचार के लिये यह सभा एक आदर्श सभा समझी जाती थी। अपने ग्रंथ 'समन्तपासादिका (पृ. ३३८) में बुद्धघोष ने इस सभा को तावतिंश देवों की सभा (इन्द्रसभा) से उपमा दी है। 'सुमंगलविलासनी' में महाली नामक एक सामान्य लिच्छवि के एक कथन का उल्लेख है जिसमें उस वीरभक्त ने कहा था कि "मैं एक क्षत्रिय हूँ। बुद्ध भी एक क्षत्रिय ही हैं। यदि उसका ज्ञान बढ़ते–बढ़ते सर्वज्ञता की सीमा को पहुँच सकता है तो मैं भी क्यों नहीं सर्वज्ञ हो सकता ?" इसी ग्रंथ में लिच्छवियों के न्यायशासन पर भी प्रकाश डाला गया है। जब कोई चोर पकड़ा जाता तो वह न्यायाधीश के सामने लाया जाता। यदि वह निरपराध सिद्ध होता तो छूट जाता और यदि अपराध सिद्ध हुआ तो तुरन्त दण्ड न देकर उसे व्यौहारिक नामक राजकर्मचारी के सम्मुख उपस्थित किया जाता। वह भी उसे दण्ड का पात्र समझता तो 'अन्तःकारिक' के पास भेजता, वहाँ से वह सेनापति के सम्मुख पेश किया जाता, यहाँ भी यदि अपराध प्रमाणित होता तो वह उपराजा के सामने पेश किया जाता और अन्त में राजा के सम्मुख उसकी सुनवाई होती। इस अन्तिम अदालत में भी यदि वह अपराधी ही सिद्ध होता तब उसे 'पवेनियोत्थक' (नजीरों का संग्रह) ग्रंथ के आधार पर दण्डित किया जाता। इस प्रकार अपराधी भले ही छूट जाय, किन्तु निरपराधी कभी भी दण्डित नहीं किया जा सकता था। वैशाली नगरी के निकट ही गंगा के किनारे एक पर्वत पर हीरे–जवाहरात की एक भारी खान थी। मगध नरेश अजातशत्रु का उस पर दांत था, किन्तु लिच्छवियों के अद्भुत संगठन और साहस के सम्मुख उसकी एक न चली अन्त में उसने कूटनीति से काम लिया और लिच्छवियों में फूट के बीज बोने शुरू किये फलस्वरूप वह इस अनुपम वज्जिदेश, भगवान महावीर की जन्मभूमि, पर आक्रमण करने का साहस कर सका और उस पर विजय पा सका।

बुद्धघोष के कथनानुसार बुद्ध के समय मगधदेश का राजा बिम्बसार था और उसके इस नाम का कारण उसके शरीर का सुनहरी रंग था (बिम्ब=सुनहरी), एक बड़ी सेना का अधिपति होने के कारण वह 'सेनिय' (श्रेणिक) भी कहलाता था। उसके पुत्र अजातशत्रु की माता कौशल नरेश महाकौशल की कन्या वैदेही थी। इस महाकौशल का पुत्र पसेनदी (प्रसेनजित) था। 'मज्झिमनिकाय' की टीका में बुद्धघोष लिखते हैं कि पसेनदी ने जब बुद्ध की ख्याति सुनी तो उसे ईर्ष्या हुई। वह उस समय बुद्ध के विरोधी अन्य मतों के पक्ष में था। उसकी वय बुद्ध के समान ही थी। बुद्ध ने उसका मत परिवर्तन करने के लिये अपने प्रधान शिष्य सारिपुत्र को उसके पास भेजा, किन्तु राजा ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया। अन्त में वह बौद्धधर्म में दीक्षित हो गया और उसने संघ की बड़ी सेवायें की। उसके अन्तःपुर की स्त्रियां बुद्ध की सेवा में लगी रहती थीं।

'संयुत्तनिकाय' का एक अध्याय 'कौशलसंयुत्त' है जिसमें बुद्ध और प्रसेनजित के धार्मिक प्रश्नोत्तर दिये हुए हैं। उसकी टीका में बुद्धघोष लिखते हैं कि बुद्ध और प्रसेनजित की प्रथम भेंट जेतवन में हुई। उसने म. बुद्ध से प्रश्न किया कि जब निगंथनातपुत्त (महावीर), मक्खलि गोशाल, पूरण कस्सप आदि वयोवृद्ध महात्मागण जीवित हैं तब बुद्ध अपने आपको 'सम्मासंबुद्ध' क्यों कहते हैं। इसके उत्तर में बुद्ध ने कहा कि क्षत्रिय, उरग, अग्नि और अर्हत वय में छोटे होने पर भी उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। राजा ने प्रश्न किया, 'क्या पृथ्वी पर कोई ऐसा भी प्राणी है जिसे बुढ़ापा या मृत्यु नहीं प्राप्त होगी?' बुद्ध ने इसका उचित समाधान कर दिया। तदनन्तर उन दोनों के बीच इस विषय पर वाद–विवाद हुआ कि 'प्राणी' को आयु का मोह हद से ज्यादा है। बुद्धघोष कहते हैं कि बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् भी प्रसेनजित ने अन्य धर्माचार्यों यथा– निगंथ, जटिल, अचेलक, परिव्राजक, एक शतक आदिकों की उपेक्षा नहीं की बरन् पूर्ववत आदर भाव रक्खा। उसने एक बार बुद्ध से प्रश्न किया कि 'अर्हतों में सबसे प्रमुख कौन है?' तो बुद्ध ने उत्तर दिया 'तुम गृहस्थी हो, तुम्हें विषय भोगों में आनन्द आता है। तुम इस विषय को नहीं समझ सकोगे।' राजा बेचारा चुप हो गया। बुद्ध ने राजा को धन की उपयोगिता भी बताई।

इस प्रकार बौद्धाचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थों में महावीरकालीन इतिहास विषयक अनेक रोचक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत लेख में हमने केवल उन्हीं कथनांशों को लिया है जो भगवान महावीर, उनके धर्म, उनके अनुयायियों, उनके पितृवंश, उनकी जन्मभूमि और उनके शिष्य राजागण आदि से संबंधित हैं।

———

सम्पादकीय

यह कैसा अहिंसा वर्ष ?

जीव दया को ही धर्म का मूल आधार घोषित करने वाले 'अहिंसा परमो धर्मः' का मूल मंत्र देने वाले भगवान महावीर का २६००वां जन्म महोत्सव वर्ष मनाए जाने के प्रयोजन से केन्द्र सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय समिति की प्रथम बैठक की अध्यक्षता करते हुए माननीय प्रधानमंत्री जी ने भारत सरकार के इस निर्णय की घोषणा की थी कि इस वर्ष की महावीर जयन्ती (दि. ६ अप्रैल, २००१) से प्रारंभ होने वाला वर्ष अगली महावीर जयन्ती तक 'अहिंसा वर्ष' के रूप में मनाया जाएगा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ से भी इस वर्ष को विश्व अहिंसा वर्ष (Global year of Non-Violence) घोषित करने का अनुरोध किया गया है।

वस्तुतः प्रधानमंत्री जी तथा भारत सरकार द्वारा उस अहिंसा के मसीहा को इससे अधिक उपयुक्त और कोई विनयांजलि अर्पित भी क्या की जा सकती थी? हम यह ख्याल कर प्रमुदित थे कि अब कम से कम इस वर्ष तो देश में (और यदि संयुक्त राष्ट्र संघ भी सहमत हो गया तो कदाचित् विश्व भर में) हिंसा पर प्रभावी रोक लगेगी, किसी को फांसी नहीं दी जाएगी तथा लाखों करोड़ों निरीह पशु-पक्षियों के निर्मम वध निहित मांस निर्यात के घृणित व्यापार से सरकार अपने को विरत रखेगी या कम से कम उसमें उल्लेखनीय कमी करेगी। पर लगता है यह हमारा दिवास्वप्न ही था और अहिंसा वर्ष की घोषणा भी केवल कागजी ही थी। कम से कम अभी तक तो अहिंसा वर्ष का नाम सार्थक करने के लिए केन्द्र या राज्य सरकारों द्वारा कोई उल्लेखनीय कदम उठाए गए हों ऐसा कुछ देखने सुनने में नहीं आया है।

मांस व्यापार के संबंध में 'दिशाबोध' (जुलाई से अक्टूबर २००१ के अंकों) में अनेक चौकाने वाले तथ्य डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा द्वारा प्रकाशित किए गये हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं-

१. वर्तमान में देश में १० से अधिक मशीनी यंत्रीकृत पंजीकृत बूचड़खाने हैं जिनकी क्षमता गोवा और सिक्किम में ३५ पशु प्रतिदिन से लेकर देवनार बम्बई में ४०० पशु प्रतिदिन तक है।

२. देश में इस वक्त अधिकृत बूचड़खानों की संख्या २७०२ बताई गई है जिनमें ४,१०,६४६ पशु प्रति दिन काटे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अवैध बूचड़खाने भी कार्यरत हैं जिनकी संख्या इनसे कहीं अधिक आंकी जाती है। एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक शहरी क्षेत्र में करीब ५० प्रतिशत जानवर अनधिकृत बूचड़खानों में काटे जाते हैं।

३. इनके अतिरिक्त मांस निर्यातकों के द्वारा विशाल, बड़े आधुनिक एवं विशाल पूंजी आधारित निजी बूचड़खाने भी स्थापित किए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं- आंध्रप्रदेश में मेडक, उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ और सहारनपुर, महाराष्ट्र में औरंगाबाद, पंजाब में डेरा बस्सी तथा पश्चिम बंगाल में मौरीग्राम (कलकत्ता)।

४. स्वाधीनता प्राप्ति के समय देश में केवल ३०० बूचड़खाने थे तथा देश का मांस निर्यात शून्य था जो अब १००० करोड़ रुपए का हो गया है।

५. कृषि उत्पादों व उनके संवर्द्धन के समान मांस उत्पाद एवं उसके संवर्द्धन का विषय भी अब कृषि मंत्रालय को सौंप दिया गया है। अस्तु अब अंडे-मांस का उत्पाद भी कृषि उत्पाद में शामिल हो गया है जिसमें सतत् संवर्द्धन करना उक्त मंत्रालय की जिम्मेदारी बन गया है।

हम यह आशा तो स्वप्न में भी नहीं करते थे कि भारत सरकार इस अहिंसा वर्ष में नैतिकता के आधार पर विशाल यांत्रिक पशुवधशालाओं को बंद कर देगी तथा १००० करोड़ रुपये के मांस-निर्यात व्यापार से विरत हो जाएगी, पर इतनी अपेक्षा तो करते ही थे कि इस अहिंसा वर्ष में कोई नयी पशुवधशाला चालू नहीं की जायेगी तथा मांस निर्यात वृद्धि को प्रोत्साहित नहीं किया जायेगा।

इसके विपरीत बहुचर्चित कुबेरपुर स्थित आधुनिक विशाल यांत्रिक पशुवधशाला को मांस उत्पाद बढ़ाने की उतावली में कुछ दिन पहिले आधे अधूरे रूप में ही चालू कर दिया गया है। और भी चौंकाने वाला तथ्य जो राष्ट्रीय समिति की कार्याध्यक्ष तत्समय केन्द्रीय संस्कृति मंत्री श्रीमती मेनका गाँधी ने दि. १७.६.२००१ को जैन समाज के एक प्रतिनिधि मंडल को बताया यह है कि सरकार ने इसी माह में १७ नए बूचड़खाने खोलने के लाइसेंस जारी किए हैं।

अब जरा गौर फरमाएं कि विशाल यांत्रिक पशुवध शालाओं में निरपराध निरीह पशुओं का कितनी निर्दयतापूर्वक वध किया जाता है। डॉ. बगड़ा लिखते हैं-

'इन यांत्रिक कत्लखानों में स्वास्थ्य परीक्षण के बाद जानवरों को १२ ब्लाक वाले एक विशाल हाल में लाया जाता है। प्रत्येक ब्लाक में २० जानवरों को इस प्रकार खड़ा किया जाता है कि वे हिलडुल भी न सकें। इस स्थान पर **जानवरों को २४ घंटे भूखा रखा जाता है** और पीने के लिए केवल पानी दिया जाता है। पशुओं की खाल की क्वालिटी अच्छी बनाने के लिए **उन पर खौलता हुआ पानी डाला जाता है और फिर आटोमैटिक छड़ियों से घंटों पिटाई की जाती है**। विशेषज्ञों का कहना है कि इस कार्यवाही से जानवर का सारा खून खाल तक पहुंच जाता है और जब खाल उतारी जाती है तो न केवल वह आसानी से उतर

जाती है, बल्कि उसकी क्वालिटी भी अधिक अच्छी हो जाती है। इस प्रक्रिया के बाद इन पशुओं को चैम्बर में लाया जाता है। १६ लाख रुपए की लागत से तैयार हुई इस मशीन में जानवरों के सिर को छोड़कर पूरा शरीर डाल दिया जाता है। फिर इसी चैम्बर में जानवर के सिर में आग्नेयास्त्र चलाकर २२ बोर की गोली मारी जाती है। इसके बाद चैम्बर को घुमाया जाता है और पशु के अचेत होने पर उसे खुले स्थान पर लाया जाता है जहाँ मौलवियों की मौजूदगी में उन्हें हलाल किया जाता है तथा उनके गले पर छुरी फेर कर कलमा पढ़ा जाता है। मशीन इस प्रकार बनाई गई है कि जब जानवर को हलाल किया जाता है तो इस्लामिक रीति रिवाज अनुसार उसका रुख काबा की तरफ हो जाता है।'

इस्लामिक देशों को छोड़कर मांस उत्पाद की घरेलू खपत के लिए या निर्यात के लिए हलाल की यह क्रूर प्रक्रिया कहीं नहीं अपनाई जाती पर हमारे मांस निर्यात के मुख्य बाजार तो मुस्लिम अरब देश ही हैं और हलाल मांस की आपूर्ति से उस बाजार पर कदाचित् हमें एकाधिकार प्राप्त हो गया है।

विशाल यांत्रिक पशुवधशालाओं के अतिरिक्त देश में वर्तमान में चालू सहस्रों छोटी-बड़ी अवैध पशुशालाओं में भी लाखों छोटे-बड़े पशु क्रूरतापूर्वक हलाल किए जाते हैं। कम से कम उन पर तो सरकार इस अहिंसा वर्ष में रोक लगा ही सकती है।

श्रीमती मेनका गांधी पशुओं के प्रति अपनी असीम करुणा के लिए विख्यात हैं। उन्होंने एक सीमा से अधिक बोझा पशुओं पर लादे जाने या उनसे दिन रात काम लिए जाने को दंडनीय अपराध बनवा दिया है। अभी हाल ही में घुड़दौड़ों (रेस) में घोड़ों को चमड़े के चाबुक प्रहार कर और तेज दौड़ने के लिए मजबूर करने को भी दंडनीय अपराध बना दिया गया है, उन्होंने सरकस व मदारियों के खेलों को भी प्रतिबंधित किया है क्योंकि वे मूक पशुओं को अत्यधिक यातना देकर प्रदर्शन के लिए उनकी प्रकृति के प्रतिकूल विचित्र-विचित्र मनोरंजक खेल सीखने के लिए बाध्य करते हैं।

मुंबई से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'समाज प्रवाह' के १५ सितम्बर, २००१ के अंक में प्रकाशित निम्नलिखित समाचार भी अवलोकनीय है-

"हाल ही में मेनका जी ने अपनी भारत सरकार से गधों के बारे में एक नए श्रम कानून के तहत 'डंकी लॉ' का निर्धारण करा कर अद्भुत काम किया है। इस कानून के अनुसार अब गधों से २० मिनिट के पानी पीने के अंतराल के साथ आठ घंटे ही काम लिया जा सकेगा तथा चार घंटों की ड्यूटी के बाद एक घंटे का भोजन अवकाश भी उन्हें देना होगा, उसे आठ घंटे की ड्यूटी में ४५ कि.मी. से अधिक नहीं चलाया जाएगा, गधे/गधी से सूर्योदय पूर्व व सूर्योदय के उपरांत काम नहीं लिया जाएगा तथा उसका समय-समय पर स्वास्थ्य परीक्षण कराना भी लाजिमी होगा, आदि-आदि...।"

हमें यह देखकर दुःख होता है कि पशुओं के प्रति इतनी करुणा प्रदर्शित करने वाली श्रीमती मेनका गांधी का ध्यान इन यांत्रिक कत्लखानों में वध हेतु लाए गए गाय, भैंस, बैल आदि निरीह मूक पशुओं को मृत्यु पूर्व इतनी घोर यातना दिए जाने तथा हलाल की क्रूर प्रक्रिया पर क्यों नहीं जाता ?

बंधुवर डॉ. बगड़ा जी ने 'दिशाबोध' में उन पर थोपी गई भारी जिम्मेदारी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि भारत सरकार ने योजना आयोग के मांस उत्पाद संबंधी नीति निर्धारण हेतु गठित छह सदस्यीय उपसमिति में अहिंसक वर्ग से उन्हें एकमात्र सदस्य मनोनीत किया है जहां उन्हें अकेले को सरकार द्वारा जारी मांस समर्थक नीति का मुकाबला करना है, प्रतिवाद करना है। श्री बगड़ा जी ने इस समिति में अपने मनोनयन को एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धि माना है जिससे सम्पूर्ण अहिंसक समाज गौरवान्वित हुआ है। निःसंदेह, योजना आयोग की इस महत्वपूर्ण समिति का सदस्य नियुक्त किया जाना श्री बगड़ा जी के लिए एक बड़े गौरव की बात है, पर जिस समिति का घोषित उद्देश्य ही मांस निर्यात को बढ़ाने के लिए आवश्यक उपाय सुझाना हो तथा जिस समिति के अध्यक्ष मौरी ग्राम के विशाल यांत्रिक पशुवधशाला के मालिक श्री इरफान अल्लाना हों जो देश से अकेले ही सत्तर प्रतिशत मांस निर्यात करते हैं, हमारी समझ में नहीं आता कि उस समिति का सदस्य नामांकित किए जाने पर हम उन्हें बधाई दें या उनके प्रति संवेदना प्रकट करें, क्योंकि इस समिति की संस्तुतियां तो निश्चित रूप से,श्री बगड़ा जी के घोर विरोध के बावजूद, मांस उत्पाद एवं निर्यात के बढ़ाने के उपाय ही सुझाने वाली होंगी तथा उसके एक माननीय सदस्य होने के नाते उस हिंसा-वृद्धि में भागीदारी का कुछ तो दोष उनको आएगा ही।

– अजित प्रसाद जैन

महावीर वाणी

सव्वेसिं जीवियं पियं।
सभी को अपना जीवन प्रिय है।

सव्वेहि भूएहिं दयाणुकंपी।
सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

तीर्थंकर महावीर के पुण्यमयी वचन का प्रतिरूप

— डॉ. कामता प्रसाद जैन

भगवान महावीर जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर थे। उन्होंने स्वयं नवीन मत की स्थापना नहीं की थी; बल्कि क्षीण हुए जैन धर्म का पुनरुद्धार किया था– अपने ही ढंग से अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव के अनुकूल उसका प्रतिपादन किया था। जब तक भगवान महावीर पूर्ण सर्वज्ञ नहीं हो लिये थे तब तक उन्होंने तीर्थ–प्रवर्तन रूप में एक शब्द भी मुख से नहीं निकाला था। जीवनमुक्त परमात्मा होकर ही उन्होंने लोककल्याण भावना–मूलक धर्म का निरूपण किया। जो कुछ उन्होंने कहा, उसका साक्षात् अनुभव कर लिया था– ज्ञान उनमें मूर्तिमान हो चमका था। इसलिए उन्होंने जो कहा वह वस्तुस्थिति का फोटोमात्र था। उनका सिद्धान्त कारण–कार्य सूत्र पर अवलम्बित था। उससे जिज्ञासुओं को पूर्ण संतोष मिला था और वे उनकी शरण में आये थे। बौद्ध शास्त्रों के कथन से यह आभास होता है कि तीर्थंकर महावीर के प्रथम पुण्यमयी प्रवचन का प्रतिरूप कैसा था ? उनमें लिखा है कि जब म. गौतम बुद्ध ने निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों से घोर तपस्या करने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया:–

"एवं वुत्ते, महानाम, ते निगण्ठा मं एतदवोचुं, निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं परिजानातिः चरतो च मे तिट्ठतो–च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितंतिः, सो एवं आहः अत्थि खो वो निगण्ठा पूब्बे पापं कम्मं कतं, तं इमाय कटुकाय दुक्करिकारिकाय निज्जरेथ; यं पनेत्त्य एतरहि कायेन संवुता, वाचाय संवुता, मनसा संवुता तं आयतिं पापस्स अकरणं, इति पुराणानं कम्मानं तपसा व्यन्तिभावा नवानं कम्मानं अकरणआयतिं अनवस्सयो, आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो, कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदानाक्खयो, वेदनाक्खया सव्वं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सति।"

— (मज्झिमनिकाय)

भावार्थ– हे महानाम, जब मैंने उनसे ऐसा कहा तब वे निर्ग्रन्थ इस प्रकार बोले, अहो, निर्ग्रन्थ ज्ञात–पुत्र (महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं– वे अशेष ज्ञान और दर्शनों के ज्ञाता हैं। हमारे चलते, ठहरते, सोते, जागते, समस्त अवस्थाओं में सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा है :– 'निर्ग्रन्थों ! तुमने पूर्व (जन्म) में पाप कर्म किये हैं, उनकी इस घोर दुश्कर तपस्या से निर्जरा कर डालो। मन, वचन और काय की संवृत्ति से (नये) पाप नहीं बंधते और तपस्या से पुराने पापों का व्यय

हो जाता है। इस प्रकार के नये पापों के रुक जाने से और पुराने पापों के व्यय से आयति रुक जाती है; आयति रूक जाने से, कर्म्मों का क्षय होता है, कर्म क्षय से दुःखक्षय होता है, दुःखक्षय से वेदनाक्षय और वेदनाक्षय से सर्वदुःखों की निर्जरा हो जाती है।"

इस उद्धरण से भ. महावीर का महान व्यक्तित्व और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप स्पष्ट है। निस्सन्देह भ. महावीर का धर्म केवल धर्मविज्ञान है। उपर्युक्त उद्धरण इस कथन का साक्षी है। उसमें धर्मविज्ञान का जो रूप अंकित है, उससे जैन कर्म सिद्धांत की भी सिद्धि होती है। कर्म वह सूक्ष्म पुद्गल है जो कषायानुरक्त जीव की योगक्रिया से आकृष्ट हो उससे एकमेक बंध को प्राप्त होता है। ऐसी दशा में तपस्या द्वारा नूतन कर्मों की आयति (आस्रव) रुक जाती है और शेष कर्मों की निर्जरा हो जाने से जीव को बंधन में रखने के लिए कारण शेष नहीं रहता– वह मुक्त होकर ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय का उपभोग करता है। कर्मरूप होने योग्य यह सूक्ष्म पुद्गल जो लोक में भरा हुआ है, संसारी जीव से सम्बद्ध होकर आठ प्रकारों में परिणत हो जाता है। इन्हीं को भ० महावीर ने आठ कर्म्मप्रकृति कहा है अर्थात् (१) ज्ञानावरणी, (२) दर्शनावरणी, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय। चीन देश के बौद्ध शास्त्रों में इनमें से केवल छह मूल प्रकृतियों का उल्लेख मिलता है– न मालूम उसमें ज्ञानावरण और अन्तराय का उल्लेख होने से कैसे छूट गया? जो हो यह स्पष्ट है कि भ. महावीर ने अपने धर्म का प्रतिपादन मूलतः कर्मसिद्धांत के आधार से किया था, अतएव कर्मसिद्धान्त का विवेचन सामान्य न होकर वैज्ञानिक होना चाहिए। जैनागम इसी बात का द्योतक है।

('अनेकान्त', वर्ष ३, किरण १ (नवम्बर १६३६) में प्रकाशित लेख का अंश साभार उद्धृत– सम्पादक)

●●●●●

सच्चेण जगे होदि पमाणं।

सत्य के जगत में मनुष्य प्रामाणिक होता है।

भासियव्वं हियं सच्चं।

सदा हितकारी और सत्य वचन बोलने चाहिये।

श्रमण भगवान महावीर

– पं. बेचरदास दोशी

महावीर मगध देश में ऐसे पुरुष थे जो साधना व वस्तुस्वरूप दोनों ही विषयों में लेशमात्र उदासीन नहीं थे। भगवती सूत्र में अथवा अन्य सूत्रों में जो भी संवाद, चर्चा और दृष्टान्त अथवा कथाएं आयी हैं उन सबका अध्येता इस तथ्य को ठीक–ठीक समझ सकता है। महावीर साधना में इतने अधिक कठोर थे कि वे जीवन पर्यन्त केवल भेक्ष्य याने सच्चे अर्थ में मधुकरी पर ही अपना निर्वाह करते रहे थे। बड़े–बड़े निमंत्रणों में भोजन के लिये वे कभी गये ही नहीं और न कभी सदोष भिक्षा ग्रहण की– अर्थात् ऐसी भिक्षा जो कि उनके लिये ही तैयार की गई हो अथवा जिससे किसी व्यक्ति को असंतोष अथवा पीड़ा होती हो। निर्दोष भिक्षा न मिलने पर वे उपवास पर उपवास करते जाते थे। यदि भक्तिभाव से प्रेरित होकर किसी अनुयायी उपासक या उपासिका ने उनके लिये भिक्षा तैयार की है, ऐसा उन्हें मालूम हो जाता तो वे वैसी भिक्षा कभी नहीं लेते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने अनुयायियों– भिक्षुओं को भी ऐसी भिक्षा लेने की सख्त मनाही कर दी। उन्होंने अपने निर्वाह के लिये छोटा अथवा बड़ा अथवा किसी भी प्रकार का विहार आदि का दान कभी स्वीकार नहीं किया। दान में बगीचा, भूमि, मठ आदि कभी स्वीकार नहीं किया। अपने अथवा संघ के स्थायी निर्वाह के लिये किसी असाधारण उपासक अथवा उपासिका को भी कभी कोई प्रेरणा नहीं दी। और तो और रुग्ण होने पर भी उन्होंने औषधि लेने अथवा कोई वैद्य उपचार करने–कराने की तनिक भी इच्छा नहीं की। संघ के श्रमण–श्रमणी को भी रोगी अवस्था में हर बात में वैद्यकीय सहायता लेने का स्पष्ट शब्दों में निषेध किया है। यही उनकी कठोर साधना की रीति थी। जब कोई जिज्ञासु उनसे पूछताछ करता तो उसको अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर उन सब विषयों की जानकारी जीवन के अंतिम श्वासोच्छवास तक देते रहे। उन्होंने कहीं भी और कभी भी यह नहीं कहा कि वस्तुस्वरूप के रस विचार के विषय में स्पष्टता नहीं हो सकती अथवा यह चर्चा अव्याकृत है। भगवती सूत्र (शतक १० उद्देशक ३) में घोड़ा दौड़ता है, तब उसके पेट में अमुक प्रकार का शब्द हुआ करता है, इस विषय का एक प्रश्न है। ऐसे मामूली प्रश्न तक का उत्तर भी उन्होंने जिज्ञासु को दिया है, उसे टाला नहीं है। तात्पर्य यह है कि उनके पास जैसा भी जिज्ञासु पहुंचता वह उनसे कुछ न कुछ प्राप्त करके ही लौटता था। इस प्रकार उनकी वृत्ति ज्ञान की दृष्टि से भी असाधारण थी।

अन्तिम प्रवचन के समय काशी देशाधिपति, मल्लवंश के गणतन्त्री नौ राजा तथा कोसलादेशपति लिच्छवि–वंशीय गणतन्त्र के नौ राजा पावापुरी में भगवान महावीर की उपासना के लिए उपस्थित थे। पावा और आसपास का विशाल जनसमूह भी वहां उपस्थित था।

('भगवान महावीर स्मृति ग्रंथ' में प्रकाशित लेख का अंश साभार उद्धृत–सम्पादक)

महावीर का धर्म

— श्री काका कालेलकर

मैं महावीर को परम आस्तिक मानता हूँ। महावीर ने मनुष्य जाति ही नहीं, प्राणी मात्र के विकास और निर्माण का माध्यम अहिंसा मानी थी किंतु उसका प्रारंभ उनने क्रमवार किया—स्वयं से शुरू कर कुटुम्ब, जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व पर। इस तरह उनके हृदय की बात कार्य द्वारा जग पर छा गई। उनके हृदय में यह आत्मीयता जागी कि प्राणी मात्र का कल्याण होना चाहिए। उनकी श्रद्धा इतनी जाग्रत थी कि उस मन के आदर्श को विश्व के सामने रख वे विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके।

महावीर ऐसे जमाने में हुए थे जब कि मनुष्य—मनुष्य के रक्त का प्यासा था। उन्होंने अहिंसा का जो आदर्श कर्म द्वारा उपस्थित किया वह न केवल उनके युग के लिए वरन् युग—युग के लिए था। अतः उनने श्रद्धा को प्राणीमात्र तक फैलाया। वे भविष्य द्रष्टा थे। वे जानते थे कि आगामी हजारों वर्षों में अहिंसा कहाँ तक पहुंचेगी और यह सही भी है कि उनकी बुनियाद से ही विश्वशांति और कल्याण होने को है। महावीर ने हृदय की आवाज पर श्रद्धामय बन यह जो किया वे आस्तिकता के नाते सदैव मेरी आंखों में रहते हैं।

उनकी बुनियाद थी अहिंसा मनुष्य का स्वभाव है। अहिंसा को सिद्ध करने का रास्ता तप है, उनने यही किया। स्वभाव में वीतरागता लाना महावीर की सच्ची अहिंसा है। दूसरों पर दया करना दूसरी अहिंसा है। आज की दुनियां में से जब गांधी ने यह देखा कि सत्य ही ईश्वर है तो उनने स्वयं सत्य का तप तपा और फिर राष्ट्र निर्माण का यज्ञ प्रारम्भ किया।

सभी धर्मकारों ने अहिंसा और तप को प्रधानता दी। मन पर काबू करना, वासना मारना, लोभ, काम, क्रोध, शत्रुता पर विजय तप है। यह कर लेने से अहिंसा मन में प्रतिष्ठापित होगी। यह धर्म महावीर का धर्म है। वे जानते थे कि मनुष्य अल्पज्ञ और कमजोर है अतः उनने अहिंसा और तप के लिए भी सीढ़ियां बनाई व्यवहार धर्म की बात कही किंतु हमने मूल को छोड़ दिया, गौण को पकड़ लिया—जैनियों से मेरी खास शिकायत है। आज हम छोटी—छोटी बातों में हिंसा की दुहाई दे बचते हैं किन्तु शोषण (Exploitation) समाज खुल कर करती है। जैन समाज के जीवन में यह द्वैत आखिर क्यों ? 'बैंक बैलेंस' बढ़ाने का धर्म आज महावीर की समाज भी करती है। अमेरिका में बैंकर्स सबसे अधिक दयालु और अहिंसक कहे जाते हैं किन्तु वहां के

शेष पृष्ठ २५ पर...

आत्मजयी भगवान महावीर

– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

जिन तपःपूत महात्माओं पर भारतवर्ष उचित गर्व कर सकता है, जिनके महान उपदेश हजारों वर्ष की कालावधि को चीर कर आज भी जीवन्त प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं, उनमें भगवान महावीर अग्रगण्य हैं। उनके पुण्य स्मरण से हम निश्चित रूप से गौरवान्वित होते हैं।

आज से ढाई हजार वर्ष पहले भी इस देश में विभिन्न श्रेणी की मानव मंडलियां बसती थीं। उनमें कितनी ही विकसित सभ्यता से सम्पन्न थीं। बहुत सी अर्द्ध–विकसित और अविकसित सभ्यतायें साथ–साथ जी रही थीं। आज भी उस अवस्था में बहुत अन्तर नहीं आया है, पर महावीर के काल में विश्वासों और आचारों की विसंगतियां बहुत जटिल थीं और उनमें आदिम प्रवृत्तियां बहुत अधिक थीं। इस परिस्थिति में सबको उत्तम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने का काम बहुत कठिन है। किसी के आचार और विश्वास को तर्क से गलत साबित कर देना, किसी उत्तम लक्ष्य तक जाने का साधन नहीं हो सकता क्योंकि उससे अनावश्यक कटुता और क्षोभ पैदा होता है।

हर प्रकार के आचार–विचार का समर्थन करना और भी बुरा होता है, उससे गलत बातों का अनुचित समर्थन होता है और अन्ततोगत्वा अव्यवस्था और अनास्था का वातावरण उत्पन्न होता है। खंडन–मंडन द्वारा दिग्विजयी बनने का प्रयास इस देश में कम प्रचलित नहीं था, पर इससे कोई विशेष लाभ कभी नहीं हुआ। प्रतिद्वन्द्वी ख़ेमे और भी आग्रह के साथ अपनी–अपनी टेक पर अड़ जाते हैं। इस देश के विसंगति बहुल समाज को ठीक रास्ते पर ले आने के लिए जिन महात्माओं ने गहराइयों में देखने का प्रयास किया है उन्होंने दो बातों पर विशेष बल दिया है।

पहली बात तो यह है कि केवल वाणी द्वारा उपदेश या कथनी कभी उचित लक्ष्य तक नहीं ले जाती। उसके लिए आवश्यक है कि वाणी द्वारा कुछ भी कहने के पहले वक्ता का चरित्र शुद्ध हो। उसका मन निर्मल होना चाहिए, आचरण पवित्र होना चाहिए। जिसने मन, वचन और कर्म को संयत रखना नहीं सीखा, इनमें परस्पर अविरुद्ध रहने की साधना नहीं की, वह जो कुछ भी कहेगा अप्रभावी होगा।

हमारे पूर्वजों ने मन–वचन–कर्म पर संयम रखने को एक शब्द में 'तप' कहा है। तप से ही मनुष्य संयतेन्द्रिय या जितेन्द्रिय होता है, तप से ही वह 'वशी' होता है, तप से ही वह कुछ कहने की योग्यता प्राप्त करता है। विभिन्न प्रकार के संस्कारों और विश्वासों के लोग तर्क से या वाग्मिता से नहीं, बल्कि शुद्ध, पवित्र, संयत चरित्र से प्रभावित होते हैं। युगों से यह बात हमारे देश में बद्धमूल हो गई है। इस देश के

नेतृत्व का अधिकारी एकमात्र वही हो सकता है जिसमें चारित्र का महान गुण हो। दुर्भाग्यवश, वर्तमान काल में इस ओर कम ध्यान दिया जा रहा है। जिसमें चरित्र–बल नहीं वह इस देश का नेतृत्व नहीं कर सकता।

आत्मवशी महात्मा

भगवान महावीर जैसा चारित्र संपन्न, जितेन्द्रिय, आत्मवशी महात्मा मिलना मुश्किल है। सारा जीवन उन्होंने आत्म–संयम और तपस्या में बिताया। उनके समान दृढ़ संकल्प के आत्मजयी महात्मा बहुत थोड़े हुए हैं। उनका मन, वचन और कर्म एक दूसरे के साथ पूर्ण सामंजस्य में थे। इस देश का नेता उन्हीं जैसा तपोमय महात्मा ही हो सकता था। हमारे सौभाग्य से इस देश में जितेन्द्रिय महात्माओं की परम्परा बहुत विशाल रही है। इस देश में तपस्वियों की संख्या सदा बहुत रही है। केवल चरित्र बल ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ और कुछ भी आवश्यक है।

यह 'और कुछ' भी हमारे मनीषियों ने खोज निकाला था। वह था अहिंसा, अद्रोह और मैत्री। अहिंसा परम धर्म है, वह सनातन धर्म है, वह एक मात्र धर्म है, आदि बातें इस देश में सदा मान्य रही हैं। मन से, वचन से और कर्म से अहिंसा का पालन कठिन साधना है। सिद्धांत रूप से प्रायः सभी ने इसे स्वीकार किया है पर आचरण में इसे सही–सही उतार लेना कठिन कार्य है। शरीर द्वारा अहिंसा का पालन अपेक्षाकृत आसान है, वाणी द्वारा कठिन है और मन द्वारा तो नितांत कठिन है। तीनों में सामंजस्य बनाये रखना और भी कठिन साधना है।

इस देश में 'अहिंसा' शब्द को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। यह ऊपर–ऊपर से निषेधात्मक शब्द लगता है। लेकिन यह निषेधात्मक इसलिए है कि आदिम सहजात वृत्ति को उखाड़ देने के उद्‌देश्य से बना है। अहिंसा बड़ी कठिन साधना है। उसका साधन संयम है, मैत्री है, अद्रोह बुद्धि है और सबसे बढ़कर अन्तर्नाद के सत्य की परम उपलब्धि है। अहिंसा कठोर संयम चाहती है। इंद्रियों और मन का निग्रह चाहती है, वाणी पर संयत अनुशासन चाहती है और परम सत्य पर सदा जमे रहने की अविसंवादिनी बुद्धि चाहती है।

भगवान महावीर से बड़ा अहिंसाव्रती कोई नहीं हुआ। उन्होंने विचारों के क्षेत्र में क्रांतिकारी अहिंसक वृत्ति का प्रवेश कराया। विभिन्न विचारों और विश्वासों के प्रत्याख्यान में जो अहंकार भावना है, उसे भी उन्होंने पनपने नहीं दिया। अहंकार अर्थात् अपने आपको जगत् प्रवाह से पृथक् समझने की वृत्ति बहुत प्रकार की हिंसा का कारण बनती है। सत्य को इदमित्थं रूप में जानने का दावा भी अहंकार का ही एक रूप है। सत्य अविभाज्य होता है और उसे विभक्त करके देखने से मत–मतांतरों का आग्रह उत्पन्न होता है। आग्रह से सत्य के विभिन्न पहलू ओझल हो जाते हैं।

मुझे भगवान महावीर के इस अनाग्रही रूप में, जो सर्वत्र–सत्य की झलक देखने का प्रयासी है, परवर्ती काल के अधिकारी–भेद, प्रसंग भेद आदि के द्वारा सत्य को सर्वत्र देखने की वैष्णव प्रवृत्ति का पूर्वरूप दिखाई देता है। परवर्ती जैन आचार्यों ने 'स्याद्वाद' के रूप में इसे सुचिंतित दर्शन शास्त्र का रूप दिया और वैष्णव आचार्यों ने सबको अधिकारी– भेद से स्वीकार करने की दृष्टि दी। भगवान महावीर ने सम्पूर्ण भारतीय मनीषा को नये ढंग से सोचने की दृष्टि दी। इस दृष्टि का महत्व और उपयोगिता इसी से प्रकट होती है कि आज घूम फिर कर संसार फिर उसी में कल्याण देखने लगा है।

सत्य और अहिंसा पर उनकी बड़ी दृढ़ आस्था थी। कभी–कभी उन्हें केवल जैन मत के उस रूप को, जो आज जीवित है, प्रभावित और प्रेरित करने वाला मानकर उनकी देन को सीमित कर दिया जाता है। भगवान महावीर इस देश के उन गिने–चुने महात्माओं में हैं जिन्होंने सारे देश की मनीषा को नया मोड़ दिया है। उनका चरित्र, शील, तप और विवेकपूर्ण विचार, सभी अभिनंदनीय हैं।

('वीर परिनिर्वाण' के जून १६७४ अंक के साभार उद्धृत– सम्पादक)

●●●●●

विस्मृत हो रहा महावीर का पावन सन्देश

जब से 'परमानन्द' कवि, हुआ देश आजाद।
बूचड़खाने हो रहे, नित्य नये आबाद।।
खुले आम हैं कट रहे, मुर्गे, बकरे, मीन।
कितना मानव हो गया, निर्दय हृदय विहीन।।
प्राणि मात्र के प्रेम का, भूल गये हम मंत्र।
हिंसा भ्रष्टाचार को, जबसे किया स्वतंत्र।।
पशुओं को क्या है नहीं, जीवन का अधिकार।
कैसे तेरी चल रही, बधिक! क्रूर असिधार।।
महावीर का भूल कर, हम पावन सन्देश।
कितना जग में पा रहे, जन्म–मरण का क्लेश।।

– डॉ. परमानन्द जड़िया

महावीर का अपरिग्रह कितना ग्राह्य?

— डॉ. निजामुद्दीन

निस्पृह, अनिकेतन, निर्वसन थे महावीर। वह महावीर या महाविजयी इस अर्थ में थे कि उन्होंने आत्मविजय प्राप्त की थी। आत्मविजय ही तो महाविजय है और ऐसी महाविजय का भागी ही महावीर है। वह हिंसा, क्रोध, वैर, ईर्ष्या, लोभ, द्वेष, काम–वासना को पराभूत कर, पूर्ण आत्म संयम प्राप्त कर, इन्द्रियजयी बने और 'दिगम्बरत्व' धारण किया। नग्नता को बहुत से व्यक्ति असंस्कृत, अशिष्ट, अश्लील, अशुभ, असामाजिक मान सकते हैं, यही तो **भिन्नरुचिर्लोकः** है। लेकिन यदि इस पर सूक्ष्मता से, गहराई से विचार किया जाये तो इसमें महातप समाहित है। निःकांक्षित, वासनामुक्त, परीप्सा–मुक्त होना– कम से कम वस्तुएं रखना ही 'दिगम्बरत्व' है। जाहिर है ऐसा महाव्रत या महातप किसी एक के बस में नहीं। अपरिग्रह भी महातप की ओर एक कदम है, मोक्षोन्मुखी भावना है, ऐसा महावीर ने कहा है– 'अब्भंतरबाहिरए सव्वे गंधे तुमं विवज्जेहि।' अर्थात् आत्मा का बन्धन–मुक्त होना, अन्तर–बाह्य सम्पूर्ण ग्रंथियों का उच्छेदन करना अपरिग्रह है। वास्तव में आत्मा का बन्धन–युक्त होना ही परिग्रह है– **'परि समन्तात् आत्मानं गृह्णातीति परिग्रहः'**। लेकिन आज जब हम आवश्यक वस्तुओं को बाजारों से गायब और कहीं किसी एक समाजद्रोही के 'तलघर' में भण्डार भरे देखते हैं तो हमें आश्चर्य होता है कि अपरिग्रहवादी महावीर के देश में इतना घोर परिग्रह !

निःसंदेह लोभ–लाभ की प्रवृत्ति मनुष्य को कुमार्ग की ओर आकर्षित करती है। लोभ समस्त अनर्थों–अनिष्टों की जड़ है, इससे कोई भी समझदार व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। कहा भी गया है– **'लोभो मूलमनर्थानाम्'**। और यह भी विचारणीय है कि जैसे–जैसे लाभ वृद्धि पाता है वैसे–वैसे लोभ–वृत्ति भी वृद्धि पाती है। यह लोभ–लाभ–वृत्ति ही है जो आज कहीं तस्करी, कहीं चोरी–डकैती, कहीं होर्डिंग, कहीं रक्तपात, कहीं भ्रष्टाचार, कहीं उत्कोच (रिश्वत) के रूप में सभी कुछ लीलने को अपनी विकराल जिह्वा लपलपा रही है। महावीर ने ठीक कहा है–

इच्छा, मुच्छा, तण्हा, गेहि असंजमो कंखा।
हत्थलहुत्तणं परहडं तेणिक्कं कूडया अदत्ते।।

अर्थात् परधन की इच्छा, मूर्च्छा, तृष्णा, गृद्धि, असंयम, कांक्षा, हस्तलाघव, परधन–हरण, कूट–तोल माप और बिना दी हुई वस्तु लेना ये सब कृत्य–चोरी हैं।

जहाँ तक लाभ–वृत्ति का प्रश्न है (या परिग्रह की बात कह लीजिए), यह माना कि देश का ज़ो निर्यात होता है उसमें भी लाभ–वृत्ति होती है, व्यापार का

मेरुदण्ड तो लाभ ही है। एच.एल. भोपाल से वर्ष १९७४ के प्रथम चार महीनों में २० करोड़ रुपये के कल–पुर्जे निर्यात किये गये। लेकिन यहाँ इस बात को अच्छी प्रकार से समझना होगा कि देश के व्यापार से जो लाभ अर्जित किया जाता है, उसका लाभ तो देशवासियों को ही मिलता है, सभी को तो उससे सुख–सुविधाएं प्राप्त होती हैं। सार्वजनिक निर्माण के लिए ही उस लाभ का उपयोग किया जाता है। कहीं ऋण की अदायगी के रूप में, कहीं स्वास्थ्य, कहीं शिक्षा आदि के रूप में उसका सदुपयोग किया जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि महावीर के अपरिग्रहवाद की आज कोई उपयोगिता नहीं, यह समय की मांग के मुताबिक एक स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं, किन्तु ऐसा कहना या मानना सम्यक्त्व में न देखने का ही परिणाम है। ठीक है, भौतिक उन्नति अपरिहार्य है, प्रत्येक देश और समाज को भौतिक दृष्टि से समुन्नत होने का अधिकार है। देशवासियों को भौतिक सुख–सुविधा–सम्पन्न बनाना देश का–राज्य का कर्तव्य है और मनुष्यों को भी भौतिक सुख समृद्धि प्राप्त करने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार के साथ कर्तव्य भाव को भी स्मरण रखना होगा– सापेक्षता में देखना होगा। मनुष्यों को सुख– सुविधा सम्पन्न, समृद्धि–सम्पन्न होने का अधिकार है लेकिन क्या दूसरे के घर में आग लगाकर, क्या दूसरे के हाथ की रोटी छीनकर, क्या दूसरे को अभाव–पीड़ित कर, क्या दूसरे को मिलावटी चीजें खिलाकर? मिलावटी दवाइयों के प्रयोग से, मिलावटी खाद्य–वस्तुओं के सेवन से आज न जाने कितने व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ रहा है, न जाने कितनी माताओं की गोदें सूनी हो रही हैं, न जाने कितनी स्त्रियों का सुहाग छिन गया है! क्या दूसरों को मारकर तिजोरियां भरना ही, गोदामों और भण्डारों को भरना ही व्यापार है? यही तो परिग्रह है और इसी परिग्रह का निषेध महावीर ने बलपूर्वक किया है। अतः उनका अपरिग्रहवाद आज के युग की एक ज्वलंत मांग है– एक आवश्यकता है। उसे अप्रासंगिक कहकर अवहेलित नहीं किया जा सकता। महावीर ने जीवन–निर्वाह के लिए धन की उपेक्षा नहीं की, उन्होंने आवश्यकतानुसार धन प्राप्ति को वैध माना, लेकिन उनके अनावश्यक संग्रह को समाज के लिए विषवत माना–

'वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।

(उत्तराध्ययन)

यह धन का, वित्त का अनावश्यक संग्रह ही तो है जो देश को, समाज को समस्याओं के विषमजाल से अभिग्रस्त किये हुए है। और सीधी– सच्ची बात तो संतों की वाणी से निर्गत हुई है कि 'न वित्तेण तर्पणीयो मनुष्यः'। कबीर की शब्दावली में 'संतोष धन' सबसे बड़ा धन है।

महावीर ने पांच व्रतों के अनुपालन को आवश्यक माना। इन पांच व्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) का प्रारंभ अहिंसा से और इनका अवसान अपरिग्रह

में होता है। वस्तुतः जो निष्परिग्रही होगा, वही शीलवान होगा, वही उदारमना होगा, वही सत्यनिष्ठ होगा और वही अहिंसावादी होगा और अहिंसावादी ही मोक्ष के द्वार पर खड़ा है। अतः अपरिग्रहवाद का सम्बन्ध अध्यात्म से है, मोक्ष से है। भारत तो ऐसा देश है जहाँ जीवन का आरम्भ अध्यात्म से होता है, सांसारिकता या भौतिकता से नहीं। यहाँ त्याग की भावना को सदैव पूज्य माना गया, तथा सदैव त्यागी, वीतरागी, अनासक्त महात्माओं के सामने देश के पलक पांवड़े बिछाये गये हैं।

आज मानवता का उद्धार भौतिकता से नहीं हो सकता। भौतिकता की चमक–दमक से तो आंखें चौंधिया जाती हैं, हम मार्ग नहीं देख पाते। अतः सम्यक्दृष्टि प्राप्त करने के लिए अपरिग्रहवाद को स्वीकार करना ही होगा। इस अपरिग्रहवाद में भौतिकता और आध्यात्मिकता का मणिकांचन संयोग है। दोनों के अपूर्व सामंजस्य में ही विश्व का, सकल मानवता का, प्राणी–जगत का कल्याण है। फिर तृतीय महायुद्ध की विभीषिका पतझड़ के पीत पात के समान स्वतः गिर जायेगी, समाप्त हो जायगी।

●●●●●

शेष पृष्ठ १९ का......

सबसे बड़े धनी भी वे ही हैं। जो अहिंसा परायण हो शोषण द्वारा सबसे बड़ी हिंसा करना यह तो महावीर के आदर्शानुयायियों का धर्म नहीं।

धनिक लोग दान का सहारा ले बरी हो जाते हैं, वे सोचते हैं कि लूट कर कमाओ, दान कर देंगे, धर्म भी कमा लेंगे किन्तु यह गलत है। दान तो परिग्रह से छुड़ा अपरिग्रही बन त्याग सीखने का मार्ग भर है। दान से केवलज्ञान–निर्वाण नहीं प्राप्त कर सकते। लोग इस तरह मूल छोड़ गौण को पकड़ लेते हैं।

मुझे आश्चर्य होता है जब जैन समाज जो अनेकांत और समन्वय की दृष्टि रखता है, स्वयं छोटे–छोटे पचड़ों में पड़ जाता है! महावीर का धर्म तो नास्तिक, हिंसक, दुराचारी सब मेरे भाई हैं– यहाँ से शुरू होता है। समता भाव उसका मूल है तो मैं तो कहता हूँ कि जैन समाज को पंथ और सम्प्रदाय छोड़ अपने आपको जैन ही कहना चाहिए और तब वे महावीर के धर्म को प्रसारित करने में सफल हो सकेंगे। भेदबुद्धि को तो छोड़ ही देना होगा। अभेद अहिंसा को हृदय और साधना में उतरना होगा। हम अगर दूसरों के दोष देखने लगें तो स्वयं के दोषों को नहीं देख पायेंगे। मनुष्य में तो दोष अधिक हैं। अतः यदि उनका बहिष्कार शुरू कर देंगे तो स्वयं बहिष्कृत हो जायेंगे। अतः हम अपने दोष देखकर दूर करने का प्रयत्न करें।

('सन्मति–वाणी' मार्च १९७२ से साभार उद्धृत– सम्पादक)

क्रान्त दृष्टा : भगवान महावीर

– साध्वीश्री मंजुला

स्त्रियों के प्रति भगवान महावीर का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार व समतावादी रहा है। भगवान महावीर ने लोकमान्यता के विपरीत एक क्रांति की और पददलित व अपमानित स्त्री समाज को पुरुष समाज के बराबर ही सारे धार्मिक अधिकार दिये। अध्यात्म–विकास के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष का भेदभाव उन्हें मान्य नहीं था। आत्म–विकास के चरम रूप कैवल्यज्ञान और मुक्ति तक का अधिकार उन्होंने स्त्रियों को दिया।

यह दूसरी बात है कि स्त्री का शरीर प्रकृति से ही नाजुक व हृदय कोमल होता है। मानस भीरू होता है और अनुपाततः बुद्धि का अंश भी पुरुष की अपेक्षा कुछ कम होता है। इसलिये शरीर सापेक्ष अमुक–अमुक वैक्रिय, आहारक आदि लब्धियां, मनः पर्यय ज्ञान, परिहार– विशुद्धि और चारित्र चक्रवर्ती आदि उपाधियां स्त्री को उपलब्ध नहीं होती क्योंकि इनमें शारीरिक सामर्थ्य और मानसिक दृढ़ता की अत्यन्त अपेक्षा होती है।

पूर्वज्ञान आदि न होने का कारण बतलाया है कि स्त्री में तुच्छत्व, अभिमान, इन्द्रियचांचल्य, अधैर्य, मतिमान्द्य आदि मानसिक दोष होते हैं। आचार्य हरिभद्र ने शारीरिक अपवित्रता को इसका कारण बतलाया है। ये तथ्य बाह्य विकास तक सीमित हैं। आत्म विकास का जहां तक प्रश्न है, स्त्री–पुरुष में किसी प्रकार का तारतम्य नहीं माना गया है।

किन्तु भगवान महावीर ने स्त्री को भी साध्वी बनने का अधिकार दिया जो उस समय किसी धर्म संघ में नहीं था। स्त्री को साध्वी होने का अधिकार देना महावीर का विशिष्ट मनोबल था। इस प्रसंग को विनोबा भावे ने बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है–

"महावीर के सम्प्रदाय में स्त्री–पुरुष का किसी प्रकार का कोई भेद नहीं किया गया है। पुरुषों को जितने अधिकार दिये हैं, वे सब अधिकार बहनों को दिये गये हैं। मैं इन मामूली अधिकारों की बात नहीं करता हूँ जो इन दिनों चलता है और जिनकी चर्चा आजकल बहुत चलती है।... परन्तु मैं तो आध्यात्मिक अधिकारों की बात कर रहा हूँ। पुरुष को जितने आध्यात्मिक अधिकार मिलते हैं, उतने ही स्त्रियों को भी अधिकार हो सकते हैं। इन आध्यात्मिक अधिकारों में महावीर ने कोई भेदबुद्धि नहीं रखी। परिणामस्वरूप उनके शिष्यों में जितने श्रमण थे, उनसे ज्यादा श्रमणियां थीं। यह प्रथा आज तक जैन धर्म में चली आई है।"

('जैन जगत' नवम्बर १९७३ से साभार उद्धृत– सम्पादक)

भगवान महावीर चित्रावली

– श्री अगरचन्द नाहटा

भगवान महावीर के चित्र–पट्ट नवीं शताब्दी में बनाये गये थे, जिनका उल्लेख सम्वत् १३३४ के 'प्रभावक चरित्र' के बप्पभट्टिसूरि चरित्र में पाया जाता है। उसमें लिखा है कि बप्पभट्टसूरिजी को चित्रकार ने महावीर की मूर्ति वाले चार चित्र–पट्ट तैयार करके दिये। सूरि जी ने उनकी प्रतिष्ठा करके एक कन्नौज के जैन मंदिर में, एक मथुरा में, एक अणहिल्ल पाटण में और एक सत्तारकपुर में भेज दिये जिनमें से पाटण वाला पट्ट, मुसलमानों ने पाटण को नष्ट किया तब तक, वहां के मोढगच्छ के जैन चैत्य में विद्यमान था। नवीं शताब्दी में महावीर के चार चित्र–पट्ट बनाये जाने का उल्लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है। परन्तु खेद है कि आज उनमें से एक भी प्राप्त नहीं है। हरिभद्र सूरि ने 'आवश्यक वृत्ति' में समवसरण चित्र–पट्ट का उल्लेख किया है।

'कल्पसूत्र' में भगवान महावीर का चरित्र आता है और श्वेताम्बर समाज में प्रतिवर्ष पर्यूषण पर्व में 'कल्पसूत्र' पढ़ा व सुना जाता है, इसलिए 'कल्पसूत्र' की प्रतियों में भगवान महावीर के कई चित्र चित्रित किये गये मिलते हैं एवं उनका सभी श्रोतागण सम्वत्सरी के दिन दर्शन करके प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

मुद्रणयुग में सबसे पहले मणिक भीमसी बम्बई वालों ने कल्पसूत्र के चित्रों का प्रकाशन (सं. १९५८ में) किया पर वे रेखा–चित्र की तरह थे। उनके बाद कई आचार्यों, मुनियों ने भगवान महावीर के चित्र कई कलाकारों से जयपुर आदि में बनवाये। गोकुलभाई कापड़िया ने जो भगवान महावीर की दीक्षा तक के पन्द्रह सुन्दर चित्र बनाये थे, वे सर्वश्रेष्ठ रहे। उनका प्रकाशन उन्होंने करीब २५ वर्ष पहले किया था, पर उस चित्र सम्पुट की बिक्री अधिक नहीं हुई अतएव चित्रकार को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। उसके बाद जैन कला मर्मज्ञ मुनि श्री यशोविजय जी ने चित्रकार कापड़िया को काफी प्रोत्साहन दिया और उस अधूरी चित्रावली को अपनी देखरेख में पूरी करवाया। कई वर्षों के प्रयत्न से अभी वह ३५ चित्रों का सम्पुट 'तीर्थंकर भगवान महावीर' के नाम से मुनिश्री यशोविजय जी ने प्रकाशित करवा दिया है, जिसका उद्घाटन–समारोह बम्बई में भव्य रूप से मनाया गया। अब यह विशिष्ट चित्रावली ६१ रुपये में सर्वसुलभ हो गई है। इसमें भगवान महावीर के पूर्व भवों से लेकर निर्वाण तक के ३४ चित्र हैं और ३५वां चित्र गौतम स्वामी का है। इन रंगीन चित्रों के अतिरिक्त ३५ रेखाचित्रों की पट्टियां, १०५ प्रतीक–चित्र और कटिंग शैली के कई चित्र भी इसमें प्रकाशित किये गये हैं। चित्रों का परिचय चित्र के सामने ही गुजराती, हिन्दी व अंग्रेजी तीनों ही भाषाओं में दिया गया है। प्रत्येक चित्र के नीचे तीनों भाषाओं

में संक्षिप्त विषयसूचन कर दिया है। परिशिष्ट में भगवान महावीर के पूर्व भवों का परिचय देने के साथ–साथ विहारस्थल, नाम, २७ भव, कुटुम्ब–परिचय, चातुर्मास क्रम, स्थल नाम, समय, तपस्या का समय, स्थल व पारणों का विवरण, फिर उपसर्गों का समय, स्थल व प्रकार, तदनन्तर भगवान महावीर के भक्त राजाओं की सूची, पंचकल्याणक तिथि, स्थल, महावीर के विविध नाम, जन्म से लेकर मोक्ष तक के अनेक विषयों की संक्षिप्त तालिका, दिगम्बर–श्वेताम्बर मतभेद आदि ज्ञातव्य बातें देने के बाद ३५ चित्र पट्टिकाओं और १०५ प्रतीक चित्रों का विवरण गुजराती भाषा में दिया गया है। इस प्रकार भगवान महावीर का यह चित्र–सम्पुट केवल दर्शनीय ही नहीं, अपितु पठनीय भी बन गया है। चित्रों के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देने के कारण भगवान महावीर के जीवन व जैन चित्रकला की बहुती–सी जानकारी इस ग्रन्थ से मिल जाती है। बाइंडिंग भी बहुत मजबूत व सुन्दर है।

इससे पहले एक 'सचित्र महावीर चरित्र' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था, उसकी जानकारी प्रायः जैन समाज को नहीं, इसलिए उसका भी संक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक समझता हूँ। मद्रास व बैंगलोर में 'जैन मार्ग आराधक समिति' नामक संस्था है, उसकी ओर से 'सचित्र महावीर ग्रन्थ' सम्वत् २०२० की अक्षय तृतीया को प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ के लेखक व दिग्दर्शक पूज्य पंन्यास भानुविजय जी हैं, जिन्हें अभी आचार्य पद मिल चुका है। इस ग्रन्थ में श्री शंकरलाल रायपुर वाले चित्रकार के बनाये हुए भगवान महावीर से संबंधित ५१ सादे चित्र हैं। यह चित्र पूज्य भानुविजय जी की देखरेख में तैयार हुए हैं। प्रत्येक चित्र के ऊपर व सामने उसका विवरण हिन्दी में छपा है। प्रारंभ में अष्टप्रतिहार्य युक्त भगवान महावीर का तिरंगा चित्र है। उसके बाद ज्ञान कल्याणक से लेकर निर्वाण तक के ५१ चित्र इकरंगे प्रकाशित किये गये हैं। इस सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य उस समय ५ रुपये रखा गया था।

प्रकाशक–समिति ने शालिभद्र आदि के रंगीन १२ चित्रों का सेट भी प्रकाशित किया था। यह कार्य अब तक जारी रहता तो काफी चित्र प्रकाशित हो जाते और जनता को सस्ते मूल्य में मिल सकते।

श्री गोकुलभाई कापड़िया के श्रेष्ठ महावीर चित्रों में करीब २० चित्रों का उपयोग श्री जयभिक्षु की गुजराती कृति 'महावीर चरित्र' में किया गया था।

भगवान महावीर के चित्र और भी कई संस्था व व्यक्तियों ने तैयार करवाये हैं। उनकी भी संक्षिप्त जानकारी दे देना आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि इतनी अधिक जानकारी जैन समाज में किसी एक ही व्यक्ति को शायद ही हो।

बम्बई के पास ठाणा में नवपद जिनालय भगवान महावीर के पंचकल्याणक आदि के ५० चित्र बनाये जाने का उल्लेख 'श्री वर्धमान पंचासिका' ग्रन्थ में पढ़ने को मिला, जो संवत् २०११ में मंगलदास विक्रमदास जवेरी द्वारा प्रकाशित है।

कलकत्ता के श्री महेन्द्र सिंधी ने भगवान महावीर के ४२ चित्र बनाये हैं, जो जैन मित्र मण्डल आदि द्वारा जैन भवन आदि में प्रदर्शित भी किये जा चुके हैं।

भगवान महावीर की चित्रावलियां दिगम्बर समाज की ओर से भी प्रकाशित होने वाली हैं। मुनि श्री विद्यानंद जी के पास मैंने कुछ चित्र देखे थे। खुरई के पं. कमल कुमार जी शास्त्री 'महावीर चित्र शतक' शीघ्र ही प्रकाशित करने वाले हैं।

पाषाण और भित्तियों पर भगवान महावीर के चित्र कई जैन मंदिरों में देखने को मिले हैं, जिसमें से बीकानेर के बोहरा सेठी के महावीर मंदिर के भित्तिचित्र, बीकानेर के हस्त कलाकार के चित्रित किये गये बहुत ही सुन्दर हैं। फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ की प्रदक्षिणा में अभी भगवान महावीर सम्बन्धी पाषाण पट्ट आलों में लगवाये गये हैं, उन पर रंग का काम, मैं वहां बीच में गया था, तब हो रहा था। भगवान महावीर के ६ कल्याणकों के पाषाण–पट्ट बीकानेर के श्री ऋषभदेव मंदिर एवं रेलदातवाड़ी में लगवाये गये हैं। भगवान के स्नान महोत्सव आदि के भित्ति चित्र तो भाण्डासरजी आदि के कई मदिरों में पाये जाते हैं और भी अनेक जैन मंदिरों में भगवान महावीर के भित्ति–चित्रादि प्राप्त हैं, जिनमें से ब्राह्मणवाड़ के महावीर मंदिर के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भगवान महावीर तथा उनके जीवन के विशिष्ट प्रसंगों को लेकर प्रदर्शन–पट्ट (झलकियां) भी बनाये गये हैं जो समय–समय पर रेलों में या मोटरों में रखकर विशिष्ट प्रसंगों–भगवान महावीर की सवारी आदि में प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसे प्रदर्शित–पट्टों (झांकियों) में कलकत्ते की कार्तिक सुदी पूनम की सवारी में महावीर के चण्डकौशिक उपसर्ग आदि के पट्ट बहुत ही भव्य हैं। बंगाल के कलाकार इस तरह की मिट्टी की मूर्तियां आदि बनाने में बहुत निपुण हैं।

('वीर परिनिर्वाण' सितम्बर १६७४ में प्रकाशित लेख का अंश साभार उद्धृत– सम्पादक)

•••••

महावीर वाणी

इच्छाहु आगास समा अणंतिया

मनुष्य की इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

अपरिग्गहो अणिच्छो

इच्छा रहित होना अपरिग्रह है।

भगवान महावीर–विषयक पुरातत्वीय प्रमाण

– प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी

भू.पू. अध्यक्ष, पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं अभिलेखों में श्रमण विचार–परंपरा तथा उसके प्रमुख प्रवक्ता महावीर स्वामी के संबंध में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। तत्संबंधी अनेक साहित्यिक मान्यताओं को मूर्तिकारों तथा चित्रकारों ने अपनी कृतियों में मूर्त रूप प्रदान किए। जैन धर्म के संबंध में पुरालेखों, मूर्तियों तथा चित्रों के रूप में पुष्कल सामग्री उपलब्ध है। उससे साहित्यिक विवरणों की पुष्टि में सहायता मिली है। जैन धर्म ने भारतीय सस्कृति के मूलभूत सिद्धांतों–सत्य, अहिंसा, त्याग तथा परोपकार–के सवर्धन में महत्वपूर्ण योग दिया। अतः यह धर्म जनता में बहुत आदृत हुआ। साहित्यिक तथा पुरातत्वीय प्रमाणों से यह बात सिद्ध हुई है।

भगवान महावीर के जीवन–काल में उनकी चन्दन की प्रतिमा निर्मित होने के उल्लेख कतिपय जैन ग्रंथों में मिलते हैं। अनुश्रुति के अनुसार भगवान महावीर की चन्दन की प्रतिमा सिंधुसौवीर के शासक उद्दायण (रुद्रायण) के अधिकार में गई। बाद मे उनसे उसे उज्जैन के शासक प्रद्योत ने ले लिया और मूर्ति को विदिशा नगरी में रखा। उसकी एक प्रतिकृति बनवाकर वीतभयपट्टन नामक नगर में रखी गई। दैवयोग से भारी तूफान आने के कारण यह प्रतिकृति नीचे दब गई। उसके दबने से सारा नगर नष्ट हो गया। श्री हेमचन्द्राचार्य के अनुसार गुजरात के प्रसिद्ध शासक कुमारपाल ने इस प्रतिकृति को निकलवा कर उसे अणहिलपाटन नगर में प्रतिष्ठापित कराया।

भगवान महावीर की इस चन्दन–प्रतिमा के आधार पर कालान्तर में अन्य मूर्तियों का निर्माण हुआ होगा। कलिंग के प्रसिद्ध शासक खारवेल का एक अभिलेख भुवनेश्वर के समीप हाथीगुंफा में मिला है। इस लेख में लिखा है कि कलिंग में तीर्थंकर की एक प्राचीन मूर्ति थी जिसे मगध के शासक नन्द अपनी राजधानी पाटलिपुत्र ले गए। इस उल्लेख से ईस्वी पूर्व चौथी शती में तीर्थंकर–प्रतिमा के निर्माण का पता चलता है।

यहां जीवन्त स्वामी–प्रतिमा का परिचय दे देना आवश्यक है। तपस्या करते हुए महावीर स्वामी की एक संज्ञा 'जीवन्तस्वामी' हुई। कुछ ग्रंथों के अनुसार यह संज्ञा उनकी प्रारंभिक अवस्था की द्योतक है, जब वे मुकुट तथा अन्य विविध आभूषण धारण किए हुए थे। अकोटा नामक स्थान से इस स्वरूप में भगवान की एक अत्यन्त कलापूर्ण प्रतिमा मिली थी। यह मूर्ति कांसे की है और अब बड़ौदा के संग्रहालय में

प्रदर्शित है। भगवान ऊंचा मुकुट तथा अन्य अनेक आभूषण पहने हैं। उनके मुख का शांत, प्रसन्न भाव दर्शनीय है। मूर्ति पर ईस्वी छठी शती का ब्राह्मी लेख खुदा है, जिसके अनुसार यह जीवन्तस्वामी की प्रतिमा है।

मथुरा से कंकाली टीला तथा कौशांबी आदि अन्य स्थानों से गुप्तकाल के पहले की तीर्थंकर–मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। भगवान महावीर के अतिरिक्त आदिनाथ, पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ, नेमिनाथ तथा मुनि सुव्रत की मूर्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका पता कतिपय विशिष्ट चिह्नों तथा उन पर अंकित लेखों से चलता है। अनेक प्रारंभिक मूर्तियों पर लांछनों का अभाव है। लांछनों का प्रयोग गुप्तकाल के बाद व्यापक रूप से मिलने लगता है।

मथुरा तथा कौशांबी से पत्थर के बने हुए वर्गाकार या आयताकार 'आयागपट्ट' मिले हैं। पूजा के लिए इनका प्रयोग होने के कारण उन्हें 'आयागपट्ट' कहा जाता था। अनेक पट्टों पर बीच में ध्यान मुद्रा में पद्मासन पर अवस्थित तीर्थंकर मूर्ति है। उसके चारों ओर अनेक सुन्दर अलंकरण तथा प्रशस्त चित्र बने हैं। आयागपट्टों का निर्माण ईस्वी पूर्व प्रथम शती से प्रारंभ हुआ। उन पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकांश का निर्माण महिलाओं की दानशीलता के कारण हुआ। मंदिरों, विहारों तथा मूर्तियों के निर्माण में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक रुचि लेती थीं। प्राचीन शिलालेखों से इस बात की पुष्टि होती है।

कुषाण–काल (ई. प्रथम–द्वितीय शती) से जैन 'सर्वतोभद्रिका' प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हुआ। इन पर चारों दिशाओं में प्रत्येक ओर एक–एक जिन मूर्ति पद्मासन पर बैठी हुई या खड्गासन में खड़ी हुई मिलती है। ये तीर्थंकर प्रायः आदिनाथ (ऋषभनाथ), पार्श्वनाथ, नेमिनाथ तथा महावीर हैं।

मध्य प्रदेश के धुबेला संग्रहालय में एक अत्यन्त सुन्दर सर्वतोभद्र मूर्ति है, जो पूर्व–मध्यकाल की है। उस पर उक्त चारों तीर्थंकरों के चिह्न भी अंकित हैं, जिससे उनके पहचानने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

सर्वतोभद्रिका प्रतिमा की परंपरा मध्यकाल के अन्त तक जारी रही। मथुरा, देवगढ़ आदि स्थानों से प्राप्त अनेक सर्वतोभद्रिका मूर्तियां अभिलिखित हैं और मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व की हैं।

गुप्त तथा मध्य काल में निर्मित भगवान महावीर की मूर्तियां बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। कुछ ऐसे शिलापट्ट गुप्तकाल से उपलब्ध होने लगते हैं जिन पर चौबीसों तीर्थंकरों का एक साथ अंकन मिलता है। गुप्त–युग तथा विशेषकर मध्यकाल में तीर्थंकर प्रतिमा के अगल–बगल या ऊपर–नीचे अनेक देवी–देवताओं एवं यक्ष, सुपर्ण, विद्याधर आदि के चित्रण भी मिलते हैं। ये भगवान के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित करते हुए अंकित मिलते हैं।

महावीर जी की गुप्तकालीन कपितय मूर्तियां भारतीय कला के सर्वोत्तम उदाहरणों में गिनी जाती हैं। भगवान की शांत निश्चल मुद्रा को तथा सिर के पीछे अलंकृत प्रभावली को प्रदर्शित करने में कलाकारों ने अत्यधिक सफलता प्राप्त की। मूर्तियां अधिकतर पद्मासन में मिलती हैं। सिर पर कुंचित केश तथा वक्ष पर श्रीवत्स या वर्धमानक्य चिह्न मिलता है। अंग–प्रत्यंगों की गठन बड़ी सुगढ़ होती है। ऐसी अनेक कलापूर्ण मूर्तियां मथुरा, कौशांबी, अहिच्छत्रा, देवगढ़, अकोटा आदि से मिली हैं।

तीर्थंकर महावीर स्वामी के मंदिरों का निर्माण कब से प्रारंभ हुआ, यह एक विवादग्रस्त बात है। प्राचीन जैन आगमों में प्रायः तीर्थंकर–मंदिरों का उल्लेख नहीं मिलता। महावीर स्वामी अपने भ्रमण के समय मंदिरों में नहीं ठहरते थे, बल्कि चैत्यों में विश्राम करते थे। इन चैत्यों को टीकाकारों ने 'यक्षायतन' (यक्ष का पूजास्थल) कहा है। भारत में यक्ष–पूजा बहुत प्राचीन है। यक्षों के मंदिरों या थानों में उनकी पूजा होती थी। 'भगवती सूत्र' नामक जैन ग्रंथ के अनुसार भगवान महावीर ने 'पृथिवी शिलापट्ट' के ऊपर बैठकर एक वृक्ष (शाल) के नीचे तप किया, जहाँ उन्हें सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान बुद्ध ने पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर ज्ञान प्राप्त किया था। बुद्ध के उस आसन का नाम 'बोधिमंड' प्रसिद्ध हुआ। उसका अंकन प्रारंभिक बौद्ध कला में बहुत मिलता है जिसकी पूजा का बड़ा प्रचार हुआ। बोधिमंड तथा बुद्ध से संबंधित बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप आदि की ही प्रारंभ में पूजा होती थी। बुद्ध की मानुषी–मूर्ति का निर्माण बाद में शुरू हुआ। उसके पहले जैन तीर्थंकरों की मानुषी प्रतिमाएं अस्तित्व में आ चुकी थीं।

चैत्य वृक्ष की पूजा जैन धर्म का भी एक अंग बन गई। विभिन्न तीर्थंकरों से संबंधित चैत्य वृक्षों के विवरण जैन साहित्य में उपलब्ध हैं। ऐसे तरुवरों में कल्पवृक्ष, शाल, आम्र आदि महत्वपूर्ण वृक्ष माने जाने लगे और इनका प्रदर्शन तीर्थंकर प्रतिमाओं तथा उनके शासन–देवताओं के साथ किया जाने लगा। चैत्य वृक्ष ही मंदिरों के प्रारंभिक रूप मान्य हुए। यद्यपि आधुनिक अर्थ में प्राचीनतम जैन मदिरों के स्वरूप का स्पष्ट पता हमें नहीं है, पर इतना कहा जा सकता है कि अनेक मंदिर ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुके थे।

वैशाली के ज्ञातृ कुल में वैशाली नगरी के समीप कुंडग्राम (आधुनिक 'वासुकुंड') में ई. पूर्व ५९९ में भगवान महावीर का जन्म हुआ। उनके पिता सिद्धार्थ इस कुल के प्राचीन मुखिया थे। महावीर की माता त्रिशला थीं। प्राचीन जैन ग्रंथों में महावीर स्वामी को 'विदेह सुकुमार' तथा 'वैशालिक' नाम भी दिए गए हैं। उन्होंने दक्षिण बिहार के पर्वतीय तथा जांगलिक प्रदेश के भ्रमण में अनेक वर्ष बिताए। इससे यह स्वाभाविक था कि यह क्षेत्र महावीर स्वामी के उपदेशों का विशेष पात्र होता। जैन अनुश्रुति के अनुसार राजगृह महावीर स्वामी को सबसे अधिक पसंद था। उन्होंने चौदह वर्षावास

राजगृह तथा नालंदा में किए। राजगृह में महावीर स्वामी के पूर्वज तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म हुआ था। मुनिसुव्रत का नाम मथुरा से प्राप्त द्वितीय शती की प्रतिमा पर सर्वप्रथम उत्कीर्ण मिला है।

जैन अनुश्रुतियों के अनुसार भगवान महावीर का निर्वाण पावापुरी में हुआ। उस समय वे बहत्तर वर्ष के थे। अनेक विद्वान बिहार प्रदेश के वर्तमान नालंदा जिले में स्थित पावा को प्राचीन पावापुरी मानते हैं, परन्तु उसे प्राचीन नगरी मानने में एक कठिनाई यह है कि वहां बहुत प्राचीन पुरातत्वीय अवशेष नहीं मिले हैं। विद्वानों का दूसरा वर्ग प्राचीन पावापुरी की स्थिति उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में मानता है। इस जिले के फाजिलनगर तथा सठियांव नामक गांवों के मध्य आसमानपुर और उनके समीप अनेक प्राचीन टीले हैं। टीलों से ठीकरों, सिक्कों, मूर्तियों आदि के रूप में पुरातत्व की प्रचुर सामग्री मिलती है। जैन साहित्य में प्राप्त भौगोलिक तथा अन्य विवरणों के आधार पर देवरिया जिले के इस स्थल को ही प्राचीन पावा मानना ठीक प्रतीत होता है। यहां सम्यक् रूप से पुरातत्वीय उत्खनन बहुत आवश्यक है। इससे एक विवादग्रस्त समस्या पर अपेक्षित प्रकाश पड़ने की संभावना है।

('वीर परिनिर्वाण' के सितम्बर–अक्टूबर १६७५ के अंक से साभार उद्धृत–सम्पादक)

•••••

श्री भगवान महावीर का १६२ वर्ष पुराना सिक्का

तमिल मासिक 'मुक्कुडै' (अक्तूबर २००१) में प्रो. जीवन्धर कुमार (भद्रातती) ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा १८३६ ई. में जारी किये गये एक सिक्के का विवरण दिया है जिस पर भगवान महावीर की प्रतिकृति अंकित है। तांबे के इस गोल सिक्के का वजन १२ ग्राम, व्यास २ सेमी और मोटाई १ मिमी बताई है।

सिक्के के सामने की ओर आकर्षक डिजाइन से आवृत्त, सुन्दर भामण्डल सहित दिगम्बर ध्यानस्थ मुद्रा में पद्म पर आसीन २४ वे जैन तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की प्रतिकृति उत्कीर्ण है, और उसके पार्श्व में देवनागरी लिपि में "श्री भगवान महावीर" उत्कीर्ण है।

पृष्ठ भाग पर मध्य में कलात्मक ढंग से ऊँ और ऊर्ध्व भाग में तारे सहित अर्द्ध–चन्द्र, सूर्य और त्रिशूल की आकृतियां उत्कीर्ण हैं, तथा रोमन लिपि में HALF ANNA व EAST INDIA COMPANY और 1839 उत्कीर्ण हैं।

– रमाकान्त जैन

महामानव महावीर

— डॉ. शशि कांत

वर्द्धमान महावीर भारत की महानतम विभूतियों और विश्व संस्कृति के अन्यतम युगचेताओं में से एक थे। उनका जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को बिहार में वैशाली के निकट कुण्डग्राम नामक स्थान पर लिच्छवि गणतंत्रीय संघ के प्रभावशाली सदस्य ज्ञातृक–कुल में हुआ था। वे अपने समय के अनूठे क्रांतिकारी थे। उन्होंने आज से ढाई हजार वर्ष पहले दुनिया में सत्तारूढ़ों के जुल्मों के खिलाफ आवाज उठाई थी,समाज में फैले अनैतिक अनाचार और ऊँच–नीच की भावना का विरोध किया था, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा की खिलाफत की और धार्मिक तानाशाही का प्रतिवाद किया था। जो काम आज के युग में मार्क्स और महात्मा गांधी ने राजनैतिक क्षेत्र में किया, उससे भी कहीं अधिक क्रांतिपूर्ण कार्य अपने समय में महावीर ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में किया था।

महावीर के पास केवल अपना ही बल था और उन्होंने अपने ही बूते पर जीवन में नैतिकता की प्रतिष्ठा के लिए एक आन्दोलन चलाया। उन्होंने किसी को डराया, धमकाया या फुसलाया नहीं, बल्कि अपने चरित्र से, अपने शुद्ध सरल और तपोनिष्ठ जीवन से एवं अपने त्याग और संयम से उन्होंने लोगों को प्रभावित किया। लोगों पर सबसे ज्यादा प्रभाव इस बात का पड़ा कि उन्होंने जो कुछ दूसरों से करने को कहा उसे पहले अपने जीवन में उतारा और अपनी जिन्दा मिसाल लोगों के सामने रखी।

जिस युग में महावीर का आविर्भाव हुआ था वह सांस्कृतिक जागृति का युग था। सारी दुनिया में जहाँ–जहाँ भी मनुष्य में सोचने की बुद्धि आ गई कि चेतना की एक लहर दौड़ गई। वैसी आध्यात्मिक जागृति फिर दुनिया में दिखलाई नहीं पड़ी, अपने को समझने की मनुष्य ने इसके बाद कभी भी उतनी कोशिश नहीं की, अपने को पशु की श्रेणी से ऊपर उठाने का मनुष्य ने उतना सर्वव्यापी प्रयास फिर नहीं किया। हर तरफ अपने को और सब प्राणियों से श्रेष्ठ समझने वाले मनुष्य को एक ही चिन्ता थी कि वह अपनी श्रेष्ठता, अपना बड़प्पन और अपना ऊँचापन अन्य जानवरों से जुदागाना ढंग से सामने ला सके, उसे प्रत्यक्ष कर सके। चीन में कन्फ्यूशस और लाऊत्से नाम के दो महात्माओं ने अपने देशवासियों को अपनी पशुवत प्रवृतियों को रोकने और काबू में रखने के लिए एक सरल और संतोषपूर्ण जीवन का उपदेश दिया। यूनान में पैथागोरस ने अपने साथियों को बताया कि खाली खाना और आराम करना ही जीवन का उद्‌देश्य नहीं है, उससे परे भी कुछ है जिसको साधना ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। फिलिस्तीन में मूसा मसीह और ईरान में जरथुष्ट ने भी अपने ढंग

से लोगों को पशुता की दशा से ऊपर उठने का रास्ता दिखलाया।

हमारे देश में तो उस युग में विचारकों की एक बाढ़ सी आ गई थी। उस जमाने में यह वास्तव में दार्शनिकों का देश बन गया था। महावीर ने श्रमण परम्परा को, जो नैतिकता पर आधारित थी; सतह से ऊपर उठाया और उसमें नया प्राण फूंककर उसे एक नवीन व्यवस्थित स्वरूप दिया। उसकी देखभाल करने और उसे संभालकर रखने के लिए कुछ जीवट के उत्साही लोगों का भी निर्माण किया–उन्हें अपने आचरण की शुद्धता और सरलता से प्रभावित करके, अपने सिद्धान्तों की उनकी समझ में आने योग्य व्याख्या करके और सामाजिक असमानता की दीवार को तोड़कर। महात्मा बुद्ध ने उनके सिद्धान्तों और आदर्शों को देखा, उनसे प्रभावित हुए और उन आदर्शों को कुछ और भी लौकिक बनाने की दृष्टि से एक नये पंथ का सूत्रपात किया। वेदों के मानने वालों में स्वतंत्र विचार की लहर उठी। उपनिषदों में इस बात की जिज्ञासा की गई कि आखिर 'मैं' कौन हूँ। दर्शनकारों ने भी वैदिक हिंसा, क्रियाकांड और नैतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई। बहुत से स्वतंत्र विचारक भी हुए जिनके नाम हमें उस समय से संबंधित जैन और बौद्ध साहित्य में मिलते हैं।

सबका एक ही प्रयास था कि हम ऊपर उठें। सबकी एक ही जिज्ञासा थी कि हम अपने को पहचानें। सबका एक ही लक्ष्य था कि दुनियां में दुखों का अन्त हो जाय, तकलीफ मिट जाय और जो हमें बुरा लगता है एवं जो हमारा अनिष्ट करता है, न रहे। सबने अपने–अपने तरीके लोगों को बताये। पुरानी धारणाओं पर उन स्वतंत्र विचारकों ने हमला किया। चलती हुई अन्याय, अत्याचार और शोषण की व्यवस्था से मुक्त होने की लोगों को उन्होंने प्रेरणा दी।

धर्म के नाम पर उस समय जिस तरह अत्याचार और शोषण होता था और दूसरों को कष्ट दिया जाता था, उसकी बहुत सी कहानियां मिलती हैं। हजारों पशु बलि के लिए बंधे होते थे। नंगे बदन दास–दासी, जिन पर कोड़ों की वर्षा होती, पुरोहित जी की सेवा में रहते थे। उन लोगों पर क्या बीतती होगी, इसका अनुमान रोम और यूनान के बारे में बनी अंग्रेजी फिल्मों से ही लगाया जा सकता है जिनमें इस प्रकार के दृश्य अक्सर देखने को मिलते हैं। लोगों में इस सबके प्रति विरोध होना स्वाभाविक ही था। लेकिन इन्हें एक निर्भीक और कर्मठ नेता की जरूरत थी। महावीर ने इस कमी को पूरा किया। उन्होंने धन, जन सब त्यागकर, अपने शरीर के वस्त्रों को भी छोड़कर, पूर्ण निर्द्वन्द होकर और मान–अपमान में समभाव रखकर इस नेतृत्व को संभाला। उनकी एक ही लगन थी कि जीवों को इस दुःख की व्यवस्था से मुक्त कर दिया जाय। उनके उपदेश का सार हैः–

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विद्धातु देव।।

वे कहते थे– सब समान हैं दुख और सुख का अनुभव करने में। इसलिए किसी को कष्ट मत दो क्योंकि कष्ट दूसरों को भी उतना ही होता है जितना कि तुम्हें जब तुम्हें कोई क्लेश पहुंचाता है। सब जीवों से प्रेम करो, सबको अपना मित्र समझो और सबसे वैसा ही व्यवहार करो जैसे व्यवहार की तुम उनसे अपने लिए अपेक्षा करते हो। संक्षेप में यही महावीर की अहिंसा है। जब तुम किसी को अपनी तरफ से कष्ट नहीं पहुंचाओगे और जो दुख या कष्ट में हैं उनकी मदद करोगे तब फिर तुम्हारा शत्रु कौन हो सकता है ? तुम्हें कष्ट देना कौन चाह सकता है?

अहिंसा किसी को कर्त्तव्य से विमुख नहीं करती। महावीर ने पुरुषार्थ अर्थात् अपने को ऊंचा उठाने के लिए काम करने पर विशेष जोर दिया था। कोई पुरुषार्थी अकर्मण्य तो हो ही नहीं सकता। वह तो अपने कर्त्तव्य को करने के लिए बराबर प्रयत्नशील ही होगा। नागरिक की हैसियत से जो उसे करना है वह करेगा ही, बल्कि अहिंसा के पालन से वह और भी अच्छा नागरिक बन जायेगा क्योंकि अपने साथी नागरिकों में वह सद्भावना बनाये रह सकेगा। वह संकट के समय अपने देश और प्रियजनों की रक्षा के लिए युद्ध भी करेगा।

महावीर ने अपने स्याद्वाद सिद्धान्त द्वारा वास्तविक सह–अस्तित्व का सिद्धान्त संसार के सामने रखा। मनुष्य वही है जो अपने विरोधी की बातें भी सुन सके, उसके प्रति माध्यस्थ भाव रख सके और उसको समझ और गुन भी सके। अपनी–अपनी बात तो सभी कहते हैं – पशु भी कहते हैं। फिर मनुष्य पशु से श्रेष्ठ कैसे हुआ? वह तो और जानदार चीजों से तभी श्रेष्ठतर होगा जब उसमें उनसे ज्यादा सहने और समझने की शक्ति हागी। महावीर की शिक्षाएं, बल्कि उनका सारा जीवन ही, हमें यही बताता है कि यदि मनुष्य श्रेष्ठतम प्राणी है तो उसमें अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठता होनी चाहिए आचार की दृष्टि से। और यदि ऐसा है तो उसे अपने में ज्यादा संयम, समता, वीरता और सद्भाव एवं समभावना लाना चाहिए। महावीर की स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि हम अपने को इंसान बनायें, वास्तव में मनुष्य बनायें, अपनी पशु प्रवृत्तियों पर काबू पा लें और अपने अन्दर के मानवोचित संस्कारों को उभारें। इसके लिए आवश्यक है कि हमारे जीवन में नैतिकता की प्रतिष्ठा हो और हमारा सोया हुआ आत्माभिमान जागे एवं हमारे अन्दर सत्य के प्रति निष्ठा और सत्यान्वेषण के प्रति जागरूकता हो। इस बात की आज भारत के जन–जन को आवश्यकता है।

•••••

वन्दना: हिंसा की अहिंसा को

– डॉ. नेमीचंद जैन

राजकीय उद्यान, वन का एक सुहावना भाग, पतझड़ में भी अनायास वसन्त का आविर्भाव। पंछियों की चहक, शीतल, मन्द, सुगंधित वायु के मधुर स्पर्श। सब ओर समता, सुख, शांति और सुषमा का साम्राज्य। वनस्पतियां तक निष्कंटक, निरापद, अपनी शोभा में छकीं।

दिगम्बर श्रमण मुद्रा में वर्द्धमान महावीर बैठे हैं। उनके सम्मुख आसीन है भाव–विभोर मंत्रमुग्ध नागरिकों का समूह। सारा वनखण्ड महका हुआ है, पौधे शोभाश्री में झूम रहे हैं, उनकी सुन्दरता उनसे बांधे नहीं बंध रही है। वनपाल फूला नहीं समा रहा है, उसे उद्यान नंदनवन–सा लग रहा है। जहां तक उसकी दृष्टि जाती है, ऋतुराज का वैभव ही उसे दीख पड़ता है। अपने श्रम को इस तरह सफल देख उसे राजा से पारितोषिक पाने की इच्छा हुई। मुनिश्री के शुभागमन की सूचना लेकर वह राजभवन में पहुंचा। मार्ग में जो मिला वनपाल उससे अपने सुख की बात कहते नहीं अघाया।

राजा ने सुना तो वह अपने भाग्य पर रीझ उठा। तत्काल मुनि–वन्दना के लिए सपरिवार उपस्थित हुआ। पांवों में मन आगे चल रहा था, उत्साह का ठिकाना न था। राजा ने चरण वंदना की और बैठ गये। सभी प्रभु की देशना सुन रहे थे।

तीर्थंकर वर्द्धमान सरलता की जीवंत मूर्ति थे। अहिंसा और समत्व में झुकीं उनकी पलकें वीतरागता का बोध दे रही थीं। उन्हें देख, लग रहा था कि झुकीं पलकों में कितनी शक्ति है। नम्रता और सरलता जैसी कोई ऋद्धि नहीं है। ठीक भी है जो पलकें झुका कर चलते हैं, प्रजा उन्हें पलकों पर उठा लेती है। तीर्थंकर ईर्या समिति के साकार रूप होते हैं। उनकी पलकों पर औद्धत्य का कोई प्रश्न ही नहीं है, बल्कि उनकीं पलकों पर आरूढ़ सरलता अन्यों के औद्धत्य का शमन करती है और निर्मलता उत्पन्न करती है। एक अपार सारल्य उनके नेत्रों पर रहती है, करुणा, विनम्रता और समता का अतुल समुद्र पलकों के उस पार तरंगायित रहता है। इसीलिये वे भेद–विज्ञान के तल–वितल छू पाते हैं। ज्ञान से विनम्रता, विनम्रता से ज्ञान एक चक्र–प्रवर्तन की भांति बराबर समृद्ध होते रहते हैं।

उपस्थितों के मन में प्रभु की यह मुद्रा अंकित हो ही रही थी कि लोगों ने सहसा एक सिंह की भयावह दहाड़ सुनी और देखा कि एक सुन्दर चमरी गाय भयाक्रान्त दौड़ी चली आ रही है। सिंह गरज रहा था, लोग शांत थे, वीतरागता में मंत्रमुग्ध वनस्पतियां तक शांत थीं। भय का कहीं कोई लेश न था। सिंह से भयभीत गाय इधर से उधर दौड़ी और एक घनी झाड़ी में घुस गई। झाड़ी कंटीली थी, गाय की

सघन पूंछ उसमें उलझ गई। चमरी की सबसे बड़ी दौलत उसकी पूंछ है। प्राण भले ही चले जाएं पर वह पूंछ का एक बाल भी इधर से उधर नहीं होने देती। लाचार, विक्षुब्ध वह इस घबराहट में ठिठकी खड़ी रही कि शेर अब हमला करता है अब प्रहार करता है। इतने में शेर आ पहुंचा, उसकी गर्जना शांत हो चुकी थी, मन करुणा में नहाया हुआ था। सबने देखा उसहिंसक पशु ने चमरी पर कोई प्रहार नहीं किया वह अपने नाखूनों की कंघी से चमरी की पूंछ बड़ी सावधानी से सुलझाने लगा। उसके रक्त–पिपासु पंजे आज सेवा और करुणा में विनम्र थे। उसका वैर शांत हो गया था, प्रतिहिंसा ठण्डी पड़ गयी थी। प्राणीमात्र के लिये समता और दया का भाव उसमें करवटें ले रहा था। सारा वातावरण एक अपूर्व निर्मलता से भर उठा।

गाय प्रसन्न थी। उसे तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की वीतरागता ने निरापद कर दिया था। उसका रोम–रोम प्रभु की वंदना में समर्पित था। दर्शक इस अप्रत्याशित दृश्य पर मुग्ध थे। उन्हें सत्य स्वप्न लग रहा था। हिंसा ने अहिंसा की वंदना की थी, शक्ति ने अशक्ति को प्रणाम किया था। क्षमा का ऐसा विलक्षण समारोह मनुष्य की आंखों ने अब तक नहीं देखा था।

सिंह ने गाय को झाड़ी से मुक्त किया और आकर प्रभु के सम्मुख नतमस्तक बैठ गया। वह मनुष्य से कहीं अधिक एकाग्रता से प्रभु की वाणी सुन रहा था। उसकी पलकें विनत थीं। करुणा की अजस्र धारा आंखों से प्रवाहित थी।

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के जयघोष से वनप्रांत गूंज रहा था। धरती का कण–कण आनंद में निमग्न था।

('जैन जगत' परिनिर्वाण विशेषांक, नवम्बर, १९७४ से साभार उद्धृत–सम्पादक)

●●●●●

वर्द्धमान महावीर के जीवन–पथ के दीप– स्तम्भ

जन्म – चैत्र शुक्ल १३ को तीर्थंकर पार्श्व के निर्वाण के १७८ वें वर्ष (ईसा पूर्व ५९९) में।

गृह त्याग – मार्गशीर्ष कृष्ण १० को ईसा पूर्व ५७० में लगभग २९ वर्ष की वय में।

केवलज्ञान – वैशाख शुक्ल १० को ईसा पूर्व ५५७ में साधिक १२ वर्ष के तपश्चरण– साधना के उपरान्त।

प्रथम उपदेश – श्रावण कृष्ण १ को ईसा पूर्व ५५७ में।

निर्वाण – कार्तिक कृष्ण १५ की भोर से पहले ईसा पूर्व ५२७ में।

है महावीर जिसने अपना मन जीता है

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'

जो दुखियों का दुख हरता है,
जो उनकी सेवा करता है,
जीवन सुधा उन्हें देकर
जो स्वयं हलाहल पीता है।
है महावीर
जिसने अपना मन जीता है।

सुख में करता जो वाह नहीं,
दुख में भरता जो आह नहीं,
सुख दुख दोनों में स्थिर रह
जो समता रस को पीता है
है महावीर
जिसने अपना मन जीता है।

जो भेद स्व पर का जान सका,
अपना स्वरूप पहचान सका,
ज्योति जलाने में जीवन की
जिसका जीवन बीता है।
है महावीर
जिसने अपना मन जीता है।

पशु पक्षी में भी मन देखा
वृक्षों में भी जीवन देखा
सब जीव मात्र जिसको प्यारे
सबके हित ही जो जीता है
है महावीर
जिसने अपना मन जीता है।

निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांजलि पर्व-दीपावली

- श्री अजित प्रसाद जैन

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के ६८० वर्ष उपरान्त (४५३ ई. में) वल्लभी (महाराष्ट्र प्रदेश) में जुड़े मुनि सम्मेलन में सम्पन्न हुई सुत्तागम की अन्तिम वाचना के आधार पर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण द्वारा संकलित एवं लिपिबद्ध किए गए अवशिष्ट आगम साहित्य में एक ग्रंथ ''कल्पसूत्र'' भी है जो अन्तिम श्रुतकेवली भगवन्त भद्रबाहु स्वामी (ई.पू. ४थी शताब्दी) कृत माना जाता है। अर्द्धमागधी भाषा में निबद्ध इस ग्रंथ में वीर प्रभु के निर्वाण महोत्सव एवं उसके निमित्त से दीपमालिका पर्व मनाए जाने का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अनुसार-

''भगवान का अन्तिम चातुर्मास पावानगरी में हुआ। इस चातुर्मास में कार्तिक मास की अमावस्या के दिन जो अन्तिम रात्रि थी उस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर ने कालधर्म को प्राप्त किया--उस रात्रि में **नव मल्ल** जाति के काशी देश के राजा तथा नव लिच्छवी जाति के कौशल देश के **राजाओं का किसी कारणवश वहां सम्मिलन था।... उन्होंने इस अमावस्या के दिन... उपवास पोषध किया हुआ था। अब संसार से ज्ञान-उद्योत चला गया, अतः अब द्रव्य-उद्योत करेंगे, यह विचार कर उन्होंने** दीपक जलाए। उस दिन से **दिवाली या दीपमालिका का महोत्सव प्रचलित हुआ।''**

दिगम्बर जैनाचार्य भगवज्जिनसेन स्वामी भी अपने संस्कृत भाषा के महाकाव्य 'हरिवंश पुराण' (रचना-७८३ ई.) में भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष गमन की अलौकिक घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

''भगवान महावीर निरन्तर सब ओर के भव्य समूह को संबोधकर पावानगरी पहुंचे- - -जब चतुर्थ काल के तीन वर्ष आठ मास व पन्द्रह दिन शेष रह गए तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक अमावस्या के सुप्रभात में, रात्रि एवं दिन के संधिकाल में स्वभाव से ही योग निरोध कर, घातिया कर्म रूप ईंधन के समान अघातिया कर्मों....को भी नष्ट कर, बंधन रहित हुए, संसार के प्राणियों को सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित निर्बन्ध मोक्ष पद को प्राप्त हुए,- - भगवान महावीर के निर्वाण के समय चारों निकायों के देवों ने विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की। **उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलायी हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा।** (वहाँ उपस्थित) राजाओं ने भी प्रजा के साथ मिलकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा की- - **उस समय से लेकर भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक की**

भक्ति संयुक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रति वर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हीं की स्मृति में दीपावली मनाने लगे।

जैन वाङ्मय में भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव तथा उनके निमित्त से दीपमालिका पर्व के ये सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख उपलब्ध होते हैं तथा परवर्ती पुराणकारों-कथाकारों ने इन्हें ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है।

विक्रम की १६वीं-१७वीं शती के काष्टासंघस्थ माथुरान्वय के पुष्करगण के यशस्वी भट्टारक यशःकीर्ति ने भी, जिन्हें परवर्ती विद्वानों ने उच्च कोटि के शास्त्र मर्मज्ञ साहित्यकार के रूप में स्मरण किया है, अपभ्रंश भाषा में भगवान महावीर की वंदना निम्न प्रकार की है-

"पावापुर मध्य मुक्तीश जिनेश्वर (वर्द्धमान महावीर) ने वेदनीय का उच्छेद कर, चौसठ कर्म प्रकृतियों का नाश कर सिद्ध के निवास को वास रूप में प्राप्त किया, उन देवाधिदेव की निर्वाण प्राप्ति के उपलक्ष्य में (कार्तिकी) अमावस्या को दिवाली मनी तथा चारों निकाय के देवों तथा मनुष्यों ने निर्वाण पूजा की।" **(मूल उद्धरण पृष्ठ २ पर देखें)**।

जैन धर्मावलंबी भगवान महावीर के मोक्ष कल्याणक महोत्सव के निमित्त से दीपावली का पावन पर्व कार्तिक कृष्ण अमावस्या की रात्रि में दीपमालिका प्रज्ज्वलित कर भगवान को प्राप्त मोक्ष लक्ष्मी की तथा उसी दिन केवलज्ञान प्राप्तकर ज्ञान की ज्योति को अखंड प्रज्ज्वलित रखने वाले उनके प्रमुख गणधर गौतम गणेश की पूजा-अर्चना सहित बड़े हर्ष उल्लास, धार्मिकता एवं सात्विकता के साथ विगत २५२८ वर्षों से मनाते आ रहे हैं, जिसके ऐतिहासिक उल्लेख ३५० ई.पू. से तथा लिखित अभिलेख ४५३ ई. से आज भी उपलब्ध हैं। (इस पर्व पर जुआ खेलना या अन्य किसी भी व्यसन में लिप्त होना अथवा पटाखे आदि छोड़ने का हिंसा कार्य करना जैन संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है)।

कई मध्ययुगीन मुसलमान विद्वानों ने (देखें अब्दुल रहमान मुलतानी कृत 'सन्देश वाहा' (अपभ्रंश)- रचना १३०० ई. तथा अबुल फजल कृत 'आइन-ए-अकबरी' (फारसी)- रचना १५६४ ई.) तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, परिपूर्णा नन्द वर्मा आदि अनेक प्रख्यात विद्वानों, साहित्यकारों एवं चिन्तकों ने भी दीपावली पर्व का प्रारंभ भगवान महावीर के मोक्ष गमन से जुड़ा स्वीकार किया है। कालान्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ तथा गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं भी संयोगवश इस पर्व से जुड़ गईं।

एक बहुप्रचलित जनश्रुति के अनुसार भगवान रामचन्द्र ने लंकापति रावण का वध दशहरे के दिन कर विजय प्राप्त की थी तथा दीपावली के दिन उनका अयोध्या में प्रवेश और

राज्याभिषेक हुआ था जिसकी खुशी अयोध्यावासियों ने दीपमालिका प्रज्ज्वलित कर मनाई थी। किन्तु इस जनश्रुति की पुष्टि रामकथा के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋषि वाल्मीकि कृत 'रामायण' या बहुभान्य गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' से नहीं होती। इनके अनुसार राम ने १३ दिन के दिन-रात के निरन्तर युद्ध के बाद चैत्र शु. १४ को रावण का वध किया तथा उसकी अन्त्येष्टी कराकर व विभीषण को लंका के सिंहासन पर अभिषिक्त कराकर वे पुष्पक विमान द्वारा एक सप्ताह के भीतर ही वैशाख कृष्ण ५ को प्रयाग में भारद्वाज ऋषि के आश्रम पधार गए थे तथा अगले दिन ही अयोध्या में उनका भव्य स्वागत व राज्याभिषेक हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि दीपावली को लक्ष्मी-गणेश की पूजा होती है पर भगवान राम की नहीं।

जैन धर्मावलबियों द्वारा दीपावली पर्व को भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव के साथ इस अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के धर्मशासन से लेकर अन्तिम केवली भगवन्त जम्बू स्वामी पर्यन्त उन सभी महान आत्माओं के श्रद्धांजलि पर्व के रूप में भी मनाया जाता है जिन्होंने अपने परम पुरुषार्थ से निर्बन्ध हो संसार-सागर पार कर मोक्ष पद प्राप्त किया। उन सभी की तथा उनकी निर्वाण भूमियों की बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ वंदना की जाती है तथा दीप अर्पित किए जाते हैं।

जैन संस्कृति में उन महापुरुषों की निर्वाण तिथि को बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मृत्यु महोत्सव के रुप में मनाने की परम्परा है जो कृत कृत्य होकर संसार के आवागमन से मुक्त हो गए और जिनका यह अन्तिम शरीर था।

आधुनिक विश्व में अहिंसा की प्रासंगिकता

- श्री दुलीचन्द्र जैन

(विद्वान लेखक द्वारा अमेरिका में दि. ८-१० जुलाई २००१ को सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में दिये गये व्याख्यान का सम्पादित आलेख)

अहिंसा धर्म का आधार है। इसी के द्वारा समाज का सुचारू रूप से संचालन संभव है। दया एवं करुणा की अभिव्यक्ति इसी जीवन मूल्य में होती है। इसका व्यवहार विश्व में शांति एवं सौहार्द लाता है।

भगवान महावीर ने कहा कि धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमता रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। 'किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये' यही ज्ञानियों के ज्ञान का सार है। अहिंसा, समता, समस्त जीवों के प्रति आत्मवत भाव यही शाश्वत धर्म है। उन्होंने जीवों के प्रति समादर के भाव पर जोर देते हुए कहा कि 'सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है, वध अप्रिय है, सुख अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है। अतः किसी भी जीव को त्रास नहीं पहुंचाना चाहिये, किसी के प्रति वैर और विरोध का भाव नहीं रखना चाहिये।

आज का मनुष्य अहिंसा के उपर्युक्त मूल्यों को भूल गया है। परिणामस्वरूप आज विश्व में हिंसा, अहिंसा, तनाव, जीवन-मूल्यों का अवमूल्यन, सौहार्द का अभाव एवं आतंक बढ़ता ही जा रहा है। आधुनिक सभ्यता, जो पूर्णतः भौतिकवाद पर आधारित है, ने मनुष्य के व्यक्तित्व को संकुचित करके उसे मात्र एक आर्थिक यन्त्र बना दिया है। लेकिन क्या उसे सुख एवं आनंद प्राप्त हुआ? नहीं, आज मनुष्य को समृद्धि तो प्राप्त हुई है, लेकिन वह मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं कर सका। समृद्धि भी कुछ चुने हुए वर्ग के लोगों को मिली। कुछ वर्षों पहले साम्यवाद का बहुत बड़ा प्रभाव था और लगता था कि यह सारे विश्व को लाल रंग में रंग देगा। इसके प्रचारकों ने कहा कि हम गरीब एवं शोषित वर्ग को सम्पन्नता एवं गौरव प्रदान करेंगे, सामान्य व्यक्ति के जीवन को ऊंचा उठायेंगे, सब में समानता लायेंगे लेकिन मात्र १०० वर्षों से भी कम समय में यह असफल सिद्ध हुआ। वहाँ के देशों की सामान्य जनता ने ही इस विचारधारा का विरोध किया क्योंकि जीवन की आवश्यक वस्तुओं के अभाव से उनका जीवन त्रस्त हो गया था। दूसरी बड़ी विचारधारा पूँजीवाद की है, जिसका नायक अमेरिका है। इसका उद्देश्य है, प्रकृति के संसाधनों का अधिकतम उपभोग। यह भोगवाद पर आधारित है। आज वैज्ञानिक उपकरणों ने सामान्य व्यक्ति के जीवन को बहुत सारी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करा दी हैं, लेकिन क्या मनुष्य का जीवन पहले से

अधिक सुखी एवं सौहार्दपूर्ण है? उत्तर नकारात्मक ही है।

हाल ही में ब्रिटेन से प्रकाशित सुप्रतिष्ठित पत्र ''दि इकोनॉमिस्ट'' ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिसका शीर्षक है ''इक्कीसवीं शताब्दी में अमरीकी परिवार का भविष्य''। रिपोर्ट में प्रकाशित कुछ चौकाने वाले तथ्य इस प्रकार हैं:-

❑अमेरिका में परिवारों के संचालन एवं बच्चों के लालन-पालन में विवाह-संस्था का महत्त्व घट गया है।

❑सन् १९६० एवं सन् १९९९ के बीच ३९ वर्षों में तलाक का प्रतिशत दुगुना हो गया है।

❑सन् १९६० में अविवाहित माताओं की संख्या ५ प्रतिशत थी, जो सन् १९९९ में बढ़कर ३२ प्रतिशत हो गयी है।

❑सन १९७२ में ७२ प्रतिशत बच्चे अपने माता-पिताओं (विवाहित) के साथ रहते थे, सन् १९९९ में मात्र ५२ प्रतिशत बच्चे अपने माता-पिता दोनों के साथ रहते हैं।

❑अमेरिका में विवाहित स्त्री-पुरूषों को भी बच्चे नहीं चाहिये। सन् १९७२ में ४५ प्रतिशत माता-पिताओं के बच्चे नहीं थे। सन् १९९९ में ६२ प्रतिशत परिवारों में बच्चे नहीं है।

❑अब अमरीकी युवक-युवतियाँ बड़ी उम्र में विवाह करने लगे हैं तथा कई तो शादी के पहले कुछ काल तक शादीशुदा जीवन का प्रयोग करते हैं।

❑अमेरिका में २५ प्रतिशत स्त्रियाँ अपने पतियों से अधिक आमदनी प्राप्त कर लेती हैं। लगभग ६ प्रतिशत पुरूष घरेलू कामकाज करते हैं तथा उनकी पत्नियाँ कमाई करती हैं।

अमेरिका के विद्यालय-परिसरों में हिंसा की घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अप्रैल १९९९ में लिटलटन, कोलोराडा में तब यह चरम सीमा पर पहुँची जब कोलम्बिने हाईस्कूल के दो विद्यार्थियों ने अपनी कक्षा के १३ सहपाठियों को गोलियों से उड़ा कर स्वयं अपने जीवन को समाप्त कर दिया। पिछले सात वर्षों में कम-से-कम १४ विद्यालयों में गोली चलाकर अपने सहपाठियों को मार डालने की घटनाएँ घटित हो चुकी हैं। अमेरिका में प्रति वर्ष ३०,००० व्यक्ति गोलियों के शिकार होते हैं।

शताब्दियों से पाश्चात्य जगत में यह एक धारणा बनी कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी के उपभोग के लिए बनी है। विज्ञान ने भी इसी धारणा को बढ़ावा दिया और कहा कि पशु-पक्षी, पेड़-पौधों में प्राण नहीं है। यह भी बताया गया कि प्रकृति का भंडार असीम है और वह मात्र मनुष्य को सुखी करने के लिए है। वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से प्रकृति का अधिक से अधिक शोषण कर मनुष्य के जीवन को सुखी बनाया

जा सकता है। इस धारणा के कारण प्रकृति का निर्मम शोषण हो रहा है एवं उसके साधनों के दुरुपयोग के भीषण परिणाम सामने आये हैं। मेक्सिको में वायु का भयंकर प्रदूषण, यूक्रेन के चेर्नोबिल परमाणु केन्द्र की भयावह दुर्घटना और उसके परिणाम, ब्राजील में वर्षा देने वाले जंगलों की विनष्टि, स्वीडन में रासायनिक वर्षा द्वारा झील का विनाश, गंगा जैसी महान नदियों के जल में प्रदूषण एवं भोपाल में रासायनिक गैस की भीषण दुर्घटना इत्यादि घटनाएँ इस खतरे को प्रगट करती हैं। जहाँ भी हमारी दृष्टि जाती है, हमारी पृथ्वी उपग्रह संकट से ग्रस्त नजर आती है।

जीव जन्तुओं का विनाश-आज पशुओं का निर्ममता से वध किया जाता है। खाद्य पदार्थ, फर, चमड़ा एवं अन्य पदार्थ प्राप्त करने के लिए यान्त्रिक कत्लखानों में बड़ी परिमाण में पशु मारे जाते हैं। मनुष्य ने पशुओं की ४३५५ प्रजातियों में से २५ प्रतिशत को, पक्षियों की ८६१५ प्रजातियों में से ११ प्रतिशत को एवं जल-जन्तुओं की कुल ३४ प्रतिशत प्रजातियों को पूर्णतः समाप्त कर दिया है।

लकड़ी एवं अन्य पदार्थ प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में जंगलों को काटा जा रहा है। घरेलु पशुओं को चराने के लिए तथा सोयाबीन आदि की उपज के लिए जंगलों को नष्ट किया जाता है। जंगल कटने से पर्यावरण नष्ट हो रहा है, वर्षा कम हो रही है तथा रेगिस्तान बढ़ रहे हैं।

रसायन उद्योगों में आए दिन भीषण दुर्घटनाएं घटित हो रही हैं। जैसा कि सर्वविदित है, १९८५ में भोपाल स्थित यूनियन कारबाइड के कारखाने में एक वाल्व में छेद हो जाने के कारण ३० टन लेथल मिथाइल गैस हवा में फैल गई। इस जहरीली गैस के दुष्प्रभाव से २००० व्यक्तियों की तुरंत मौत हो गई तथा १७००० व्यक्ति हमेशा के लिए स्थायी रूप से अपंग हो गए। विश्व में बड़ी मात्रा में परमाणु बमों का निर्माण हो रहा है तथा उससे बनी हुई सामग्री को नियन्त्रण में रखना बहुत कठिन है। विकसित राष्ट्रों के पास १५००० टन परमाणु अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह हो चुका है।

माँस का बड़ी मात्रा में उत्पादन भी पर्यावरण के विनाश का कारण है। विश्व में उत्पन्न होने वाला ४० प्रतिशत अनाज उन पालतू जानवरों के चारे के लिए व्यय होता है, जिन्हें बाद में माँस पैदा करने के लिए कत्ल कर दिया जाता है। यदि विश्व में माँस का उत्पादन कम कर दिया जाय तो पर्यावरण के सुधार पर अनुकूल असर पड़ेगा।

उपभोक्तावाद का विस्तार इस पाश्चात्य विचारधारा पर आधारित है कि वस्तुओं का अधिकतम उत्पादन विश्व की सभी आर्थिक समस्याओं का समाधान है तथा अपने जीवन को समृद्ध बनाने के लिए हमें वस्तुओं का अधिकतम संग्रह एवं उपभोग करना चाहिए। अमेरिका के लोग आज सन् १९५० की तुलना में वस्तुओं को दुगुना संग्रह एवं उपभोग कर रहे हैं।

प्रश्न उठता है कि सन् १९५० की तुलना में क्या वे दुगुना सुखी हैं? यह उपभोक्तावाद का सिद्धांत अनैतिक सिद्धांतों पर आधारित है जहाँ स्वार्थ की भावना ही प्रमुख है तथा सामाजिक कल्याण का महत्त्व गौण है।

इस परिस्थिति में जैन धर्म के मूल्यों की क्या भूमिका है, इस पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। भगवान महावीर ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' में कहा, ''जहाँ पर भौतिक पदार्थों के अत्यधिक संग्रह एवं उनके उपयोग की भावना रहती है, वहाँ पर परिग्रह एवं तृष्णा की वृद्धि हो जाती है।'' तृष्णा से मनुष्य के मन में और अधिक वस्तुओं का संग्रह करने की भावना जगती है। इस प्रकार की अति संग्रह की भावना अशान्ति में परिणत हो जाती है। उपभोक्तावाद साधारण व्यक्ति को सम्पन्न व्यक्तियों का अनुकरण करने को बाध्य करता है, जिससे उनका मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक अधःपतन हो जाता है। बढ़ता हुआ उपभोक्तावाद व्यक्ति के जीवन में अशान्ति, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि पैदा कर देता है।

अहिंसा का महत्त्व :- भगवान महावीर ने जो सबसे बड़ा संदेश दिया वह अहिंसा का संदेश है। अहिंसा का अर्थ है जीव मात्र के प्रति प्रेम, सम्मान एवं एकात्मता का भाव। यही भाव आज के विश्व में वास्तविक सुख, शांति एवं सौहार्द उत्पन्न कर सकता है। वर्तमान विश्व की समस्याओं के निराकरण में इस सिद्धांत की क्या भूमिका है इस पर विचार किया जाना चाहिए। अहिंसा का सिद्धांत केवल मनुष्यों या पशुओं तक ही सीमित नहीं है, किन्तु इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। जैन धर्म मानता है वनस्पति में भी जीव है। यहाँ तक कि पृथ्वी, अग्नि, जल एवं वायु में भी अदृश्य जीव हैं, जिन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। अतः उनकी भी रक्षा की जानी चाहिए। अतः जैन धर्म के अनुसार वृक्षों को काटना या वनस्पति को नष्ट करना, भूमि को अनावश्यक खोदना, जल का अनावश्यक बड़ी मात्रा में उपयोग हिंसा का कारण है। आज पर्यावरण वैज्ञानिक एवं वन्य-जंतु विशेषज्ञ भी कहते हैं कि जंगली जानवरों की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि वे प्रकृति का संतुलन बनाने में सहायक हैं। प्रत्येक जीव का, चाहे वह छोटी सी चींटी हो या वृहद्काय हाथी, प्रकृति की सुरक्षा में महत्त्व है। आज वनस्पति के रक्षण, नदियों को प्रदूषण से बचाने एवं पृथ्वी की संपदा की रक्षा के लिए आंदोलन चल रहे हैं। इस प्रकार तीर्थंकरों ने हजारों वर्ष पहले प्राणी-रक्षा पर जो जोर दिया था, उसी का समर्थन आज के वैज्ञानिक कर रहे हैं।

प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व : विश्व के सभी प्राणियों को प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बंध बनाना चाहिये। 'तत्त्वार्थ-सूत्र' में आचार्य उमास्वामी ने कहा, ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' अर्थात् संसार के सभी प्राणी एक दूसरे को सहयोग प्रदान करते हैं। वे एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते। उनको एक दूसरे के सुख-दुःख को समझ कर उसमें सहभागी बनना चाहिये। मनुष्य को जीवित रहने में वनस्पति, नदियां, पहाड़, जीव-जन्तु इत्यादि उसकी

मदद करते हैं अतः अगर मनुष्य जीवन में शान्ति एवं आनंद चाहता है तो उसे उन सभी की रक्षा करनी चाहिये तथा उनको शोषण से बचाना चाहिये।

जैन कर्म सिद्धांत के अनुसार हिंसा जीव के बंधन का मुख्य कारण है, उससे आत्मा की शक्तियां क्षीण होती हैं तथा मनुष्य राग एवं द्वेष से ग्रसित होकर पतन को प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप जन्म एवं मरण का चक्र बढ़ता ही जाता है। हिंसा का कारण कषाय एवं प्रमाद है। भगवान महावीर ने कहा, "क्रोध, मान, माया और लोभ - ये चार दुर्गुण पाप की वृद्धि करने वाले हैं। जो अपनी आत्मा की भलाई चाहते हैं, उन्हें इन दोषों का परित्याग कर देना चाहिए।" इसी प्रकार प्रमाद भी हिंसा का बहुत बड़ा कारण है। प्रमाद के प्रकार हैं - मद्य (शराब पीना), विषय (काम भोग), कषाय और विकथा (अर्थहीन, रागद्वेषवर्द्धक वार्ता)। जैन धर्म में इसलिए भाव हिंसा अर्थात् मानसिक हिंसा से भी विरत करने का कहा गया। मानसिक हिंसा सबसे भयंकर है।

व्यावहारिक जीवन में अहिंसा : - एक गृहस्थ के लिए अहिंसा का पूर्णता से पालन करना संभव नहीं है। अतः जैन आचार्यों ने हिंसात्मक गतिविधियों के दो भाग किये-१) कुछ जिन्हें पूर्णता से त्यागना चाहिए और २) कुछ जिन्हें आंशिक रूप से त्यागना चाहिये। पुनः हिंसा का चार भागों में वर्गीकरण किया गयाः-

१. संकल्पी हिंसा : जान बूझकर प्राणियों की हिंसा करना जैसे सांडों की लड़ाई।

२. आरम्भी हिंसा : गृहस्थी को चलाने के लिए जिस हिंसा से बचना संभव नहीं है जैसे घर की सफाई या भोजन बनाने में किसी जीव की अनजान में हिंसा।

३. उद्योगी : आजीविका के लिए अर्थात् उद्योग या व्यापार चलाने में या कृषि में होने वाली हिंसा।

४. विरोधी : अपने जीवन, सम्पत्ति या देश की रक्षा हेतु होने वाली हिंसा।

साधु लोग उपर्युक्त चारों प्रकार की हिंसा का त्याग करते हैं पर एक गृहस्थ को प्रथम प्रकार की हिंसा का पूर्ण त्याग करना चाहिए। अन्य तीन प्रकार की हिंसा का त्याग उसके लिए सम्भव नहीं है लेकिन उनमें भी विवेक या जागरूकता पूर्वक जीवन यापन करना आवश्यक है।

अहिंसा का जो नकारात्मक रूप है उसकी ओर सबका ध्यान गया है पर जो सकारात्मक रूप है उस पर कम ध्यान दिया गया। सकारात्मक रूप क्षमा, करुणा, दया, दान और निस्वार्थ सेवा के रूप में अभिव्यक्त होता है।

वर्तमान जैन समाज नये सन्दर्भ में समय की आवश्यकता को पहचानकर एकता व संगठन को सुदृढ़ करके अहिंसा, करुणा, प्रेम व व्यसन मुक्त जीवन की ओर आगे बढ़कर संपूर्ण विश्व में अनेकांत, सहअस्तित्व, पुरूषार्थ, कर्मवाद, समता तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना का प्रचार करने में सबल सिद्ध होगा, यही हम आशा करते हैं।

शोध सार–

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन का प्रभाव

(बैंगलोर विश्वविद्यालय द्वारा पी–एच.डी. उपाधि प्राप्त डॉ. बी. रमेश कुमार गादिया (जैन) के शोध–प्रबंध का सार संक्षेप)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का सिंहावलोकन किया गया है तथा संत मत के निर्गुण भक्ति की स्वरूपगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। 'निर्गुण भक्ति' साहित्य में ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों के अंतर्गत उत्तर भारत के संत कवियों के अलावा राजस्थान (मरु–गुर्जर), गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों के निर्गुण संत कवियों के साहित्य तथा उनकी काव्यगत विशेषताओं पर यथोचित प्रकाश डाला गया है।

किसी भी साहित्य के विकास में युगीन परिस्थितियों का विशेष महत्व होता है। आलोच्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन के प्रभाव को जानने के पूर्व तत्कालीन परिस्थितियों को जानना आवश्यक है। साथ ही, यह ज्ञात करने के लिए कि किन परिस्थितियों में निर्गुण काव्य धारा प्रस्फुटित हुयी, प्रथम अध्याय के उत्तरार्द्ध में मध्यकालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में जैन धर्म को मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया। जैन धर्म एवं दर्शन के प्राचीन से लेकर मध्यकाल तक के प्रवाह का पर्यवेक्षण तथा पर्यालोचन किया गया। भ. महावीर से पूर्व २३ तीर्थंकर जैनों के हुए, जिनमें भ. ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे, जिन्होंने जैन धर्म व दर्शन का प्रवर्तन किया। तब से लेकर मध्यकाल तक यह अविच्छिन्न रूप से आचार्यों, साधु–संतों द्वारा चलता आया। बौद्ध धर्म, जो कि जैन धर्म का समकालीन ही रहा, मध्यकाल के आते–आते भारत से लुप्त सा हो गया। किन कारणों से आज तक भी जैन धर्म व दर्शन पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है इसका खुलासा इसमें किया गया है।

मध्यकाल में जैन धर्म अपने स्वर्णकालीन उत्कर्ष पर था। संपूर्ण दक्षिण भारत यथा–केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा आदि में जैन धर्म कभी राज–धर्म तो कभी राजाश्रय धर्म के रूप में विस्तरित रहा। इसका विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया। मुगल–काल में जहाँ बौद्ध एवं हिन्दू धर्म के लिए अपकर्ष का समय रहा, वहीं जैन धर्म अपनी विजय पताका लिए फूलता–फलता रहा,

इसका विस्तार से वर्णन इसी अध्याय के पूर्वार्द्ध में किया गया है। द्वितीय अध्याय के उत्तरार्द्ध में जैन आचार्यों, संतों एवं विद्वानों के द्वारा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान की विस्तार से चर्चा की गई। साथ ही, हिन्दी जैन साहित्य की महत्ता व उपादेयता को रेखांकित करने का मौलिक प्रयास भी किया गया।

तृतीय अध्याय में प्रमुख भारतीय दर्शन धाराओं का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए जैन दर्शन की मीमांसा की गयी। जैन दर्शन के समग्र अध्ययन एवं सरल अभिव्यंजना के लिए तीन भागों में उसे विभक्त कर विवेचित किया गया है। प्रथम : जैन तात्विक दर्शन, द्वितीय : जैन सैद्धान्तिक दर्शन एवं तृतीय : जैन योग दर्शन। साथ ही, जैन दार्शनिक साहित्य के विकास की विस्तार से चर्चा करते हुए, जैन दार्शनिक साहित्यकारों एवं उनके साहित्य का ब्यौरा भी प्रस्तुत किया गया।

चौथा, पांचवां एवं छठवाँ अध्याय इस संपूर्ण प्रबंध के मुख्य आधारभूत अध्याय हैं।

चतुर्थ अध्याय में जैन तात्विक दर्शन के आलोक में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की समीक्षा की गयी है। इसके अंतर्गत जीव (आत्म–तत्व), ब्रह्म (परमात्म–तत्व), जगत (लोक–तत्व) तथा मुक्ति (मोक्ष–तत्व) तत्वों की जैन दर्शन के आधार पर विवेचना की गयी है। इसके पश्चात् क्रमशः इन तत्वों की आलोच्यकालीन हिन्दी साहित्य के साथ तुलनात्मक समीक्षा करते हुए, जैन तात्विक दर्शन के प्रभाव को दर्शाया गया है।

पांचवें अध्याय में जैन सैद्धांतिक दर्शन के स्वरूप का विश्लेषण किया गया। इसमें कर्मवाद, अनेकांत (स्याद्वाद), रहस्यवाद, अहिंसा तथा अपरिग्रह– जैन दर्शन के इन आधार स्तंभ मौलिक सिद्धान्तों का सूक्ष्म विवेचन किया गया। साथ में मध्यकालीन संत साहित्य के साथ तुलनात्मक समीक्षा करते हुए, जैन सैद्धान्तिक दर्शन के प्रभाव को बताया गया है।

छठवें अध्याय में जैन योग दर्शन के आलोक में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। अष्टांग योग के आधार पर विवेचना प्रस्तुत करते हुए यहां भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। 'जैन भावना योग' – जैन दर्शन का मौलिक चिंतन है। इसके परिप्रेक्ष्य में आलोच्यकालीन हिन्दी साहित्य पर पड़े प्रभाव को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है।

प्रायः सभी शोध प्रबंधों में अंतिम अध्याय उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यहां परंपरा से हटकर अंतिम सातवें अध्याय में उपसंहार के पूर्व उन प्रमुख आचार्यों तथा विद्वानों का कथन प्रस्तुत किया गया जिन्होंने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन के प्रभाव को अपने शोध प्रबंधों में आंशिक रूप से ही सही, परन्तु सप्रमाण दर्शाया है।

आगे इस अध्याय में शोध प्रबंध का सिंहावलोकन करते हुए मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर पड़े जैन दर्शन के प्रभावों के संबंध में अपना निष्कर्ष एवं दृष्टिकोण प्रकट किया गया है।

संपूर्ण शोध प्रबंध में जैन आगम–शास्त्रों को उद्‌धृत किया ही है। साथ ही उन जैन दार्शनिकों, आचार्यों, साधु–मुनिराजों, विद्वानों एवं जैन कवियों के ग्रन्थों को भी उद्‌धृत किया, जो निश्चित रूपेण मध्यकालीन निर्गुण संत कवियों से पूर्ववर्ती थे यथा– उमास्वामि, कुंदकुंदाचार्य, हेमचन्द्राचार्य, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, आचार्य अमितगति, मानतुंगाचार्य, आचार्य अभयदेव, मुनि योगीन्दु, मुनि राम सिंह, पं. आशाधर आदि।

●●●●●

सिरि भूवलय

आचार्य वीरसेन के शिष्य आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा ९वीं शती ईस्वी में अंक लिपि में निबद्ध **सिरि भूवलय** विविध भाषामय काव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में १ से ६४ तक के अंकों में १६ हजार अंक–चक्र (टेबिल्स) रचित हैं। जिन्हें एक विशेष नियम से अक्षरों में परिवर्तित करने पर सांगत्य छन्द युक्त कन्नड भाषा का काव्य प्राप्त होता है और इन अक्षरों को भिन्न–भिन्न क्रमों से पढ़ने पर अन्य कई भाषाओं के काव्य बन जाते हैं। इस अनूठे ग्रंथ में प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, कला एवं विज्ञान विषयक विपुल सामग्री निहित बताई जाती है। बीसवीं शताब्दी के मध्य में इस अज्ञात रहे ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि आचार्य श्री देशभूषण महाराज के संज्ञान में आई। उन्होंने बंगलौर के पं. यल्लप शास्त्री, जिन्हें अंक–चक्रों से ग्रन्थ पढ़ने की विद्या विदित थी, की सहायता से इस ग्रंथ के मंगल प्राभृत के प्रथम १४ अध्यायों को अंक लिपि से कन्नड भाषा में रूपान्तरित कराकर उनका हिन्दी अनुवाद कराया था। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इसे विश्व का आठवां आश्चर्य मानते हुए इसकी माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित कराई थी। सन् १९५७ ई. में पं. यल्लप शास्त्री जी के निधन से इस ग्रन्थ का आगे अध्ययन अवरुद्ध हो गया था। अब कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर के शोध अधिकारी डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज' ने इस ग्रन्थ पर पुनः कार्य आरंभ किया है। उन्होंने ग्रन्थ के ३ और अध्याय कन्नड लिपि में रूपान्तरित करने व हिन्दी में अनुदित करने में सफलता प्राप्त की है, जिसके लिये वह बधाई के पात्र हैं !

– रमाकान्त जैन

जैन मूर्तिकला और कुछ विशिष्ट जैन प्रतिमाएं

- डॉ. गुलाब चंद्र जैन

'जिन प्रतिमा जिन सारिखी कही जिनागम मांहि' मोक्ष प्राप्ति के लिए सैद्धांतिक दृष्टि से मूर्ति पूजा आवश्यक है। जैन दर्शन में मूर्ति पूजा का तात्पर्य किसी ऐसे महापुरुष की पूजा से है जो सर्व प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर कृतकृत्य हो चुका हो। प्रतिमाए तीर्थंकर आदि महामानवों-मुक्त आत्माओं की गुणराशि का स्मरण व उन्हें अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने का एक सशक्त माध्यम है। पूर्व में अतदाकार व तदाकार रूप जिन प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हुआ था। स्तूप, तोरण आदि का निर्माण महामानवों की स्मृति में उनसे सम्बद्ध स्थलों पर किया जाता था। मथुरा आदि स्थलों पर कई स्तूप थे जो तीर्थंकरों से संबंधित थे। इसके पश्चात तदाकार प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इनमें भी अकृत्रिम व कृत्रिम दो भेद पाए जाते हैं। नंदीश्वर आदि द्वीपों में अकृत्रिम चैत्यालय व अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजमान हैं। सम्राट भरत ने अपने पूज्य पिताश्री ऋषभनाथ की स्मृति में उनकी जन्मभूमि अयोध्या तथा निर्वाण स्थल कैलाश आदि गिरि श्रृंगों पर स्वर्ण रत्नादि में उनकी प्रतिमाओं युक्त अनेक जिनायतनों का निर्माण करवाया था। श्री बाहुबली की तपोभूमि पोदनपुर में भी उन्हीं के शरीर के आकार की ५२५ धनुष ऊंची प्रतिमा का निर्माण हुआ था। ऐसे पौराणिक कथन हैं। तदाकार प्रतिमा निर्माण काल में मोहनजोदड़ो (सिंधु घाटी), पाटलिपुत्र के समीप लोहानीपुर व तेरापुर के लयणों से प्राप्त प्रतिमाएं जिन प्रतिमाओं की प्राचीनता का प्रबल प्रमाण हैं।

उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि जैन प्रतिमाओं का निर्माण मौर्य युग से ही प्रारंभ हो चुका था। कुषाण काल (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दि) में अनेक प्रतिमाओं का निर्माण हुआ था। इसके पश्चात प्रतिमा निर्माण कला में निरंतर निखार आता गया। गुप्त काल में अनेक मनोहर कलापूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। साथ ही लावण्यपूर्ण यक्षी प्रतिमाओं का भी बहुलता से निर्माण हुआ तथा कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई। देवगढ़, श्रावस्ती, प्रयाग, मथुरा आदि स्थल प्रतिमाओं के निर्माण केन्द्र ही बन गये और यह प्रतिमा निर्माण कार्य दक्षिण भारत तथा जयपुर (राजस्थान) आदि स्थलों पर आज भी अनवरत जारी है। प्रतिमाएं खड्गासन, पद्मासन, अर्द्धपद्मासन आदि मुद्राओं में निर्मित हुई। प्रस्तर, संगमरमर आदि के अतिरिक्त धनिक वर्ग द्वारा स्वर्ण, चांदी, पीतल आदि से निर्मित कराई गई प्रतिमाएं प्रचलन में आई। इनके अतिरिक्त बहुमूल्य हीरा, मोती, पन्ना, नीलम व स्फटिक मणि आदि रत्नों की प्रतिमाओं का दक्षिण भारत में विशेष रूप से निर्माण हुआ जिन्हें दक्षिण भारतीय नगरों जैन बिदरी, मूडबिदरी आदि में आज भी देखा जा सकता

है। प्रतिमाओं का और भी विभिन्न आकृतियों में निर्माण हुआ। चौबीसी, सर्वतोभद्रिका, पंच बालयति, नवदेवता, नंदीश्वर तथा सहस्रकूट चैत्यालय आदि अनेक विधाओं में प्रतिमाएं निर्मित हुईं। भगवान ऋषभनाथ की जटा-जूट युक्त, तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की तीन या पंच फणावलि सहित व भगवान पार्श्वनाथ की सप्त, नव व सहस्रफणावाली युक्त प्रतिमाएं यत्र-तत्र स्थापित हुईं। प्रतिमा की पादपीठ पर निर्माणकर्ता व निर्माण काल अंकित करने व वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित करने की प्रथा रही। पाद पीठ पर तीर्थंकर के चिन्ह निर्माण करने की प्रथा जारी रही। जिन पर लेख या चिन्ह नहीं पाये जाते हैं उन प्रतिमाओं को चतुर्थ काल में निर्मित मान लिया जाता है।

अति प्राचीनकाल में तीर्थंकरों की प्रतिमा के स्थान पर मात्र चरण चिन्ह ही बनाए जाते थे। तीर्थंकरों के निर्वाण स्थलों पर इन्द्र द्वारा अपने वज्रदण्ड से चिन्हित स्थलों पर श्रावकों द्वारा चरण चिन्हों का अंकन कर दिया जाता था। श्री गिरनार, सम्मेदशिखर आदि तीर्थंकरों की निर्वाण भूमियों पर प्रतिमा के स्थान पर उनके चरण-चिन्ह ही अंकित हैं।

यहाँ हम कुछ प्राचीन विशिष्ट प्रतिमाओं-जीवंतस्वामी प्रतिमा, चंदन काष्ठ निर्मित प्रतिमा, कलिंग जिन प्रतिमा व तीर्थंकर माता प्रतिमा के संबंध में विचार करेंगे।

महाराज अशोक के पौत्र सम्प्रति के काल में तीर्थंकर मूर्ति पूजा का प्रचलन हो गया था। 'वसुदेव हिंडी' के अनुसार राजकुमार सम्प्रति की दीक्षा विदिशा में जीवंत स्वामी की रथयात्रा के समारोह में सम्पन्न हुई थी। जीवंत स्वामी की ध्यानमग्न मुद्रा में खड़े, धोती, मुकुट तथा अन्य अनेक अलंकरण धारण किए- भगवान महावीर की ही गृहस्थावस्था की प्रतिमा थी। इससे यह प्रतीत होता है कि भगवान महावीर के काल में ही उनकी एक तदाकार मूर्ति गढ़ी गई थी तथा वह न केवल सम्प्रति द्वारा अपितु समस्त संघ द्वारा पूजित थी।

अंकोटा (गुजरात) से जीवंत स्वामी की दो कांस्य प्रतिमाएं कुछ वर्षों पूर्व प्राप्त हुई थीं। प्रथम प्रतिमा का पादपीठ आंशिक रूप से खंडित है फ़िर भी शीर्ष पर मकुट- सुंदर शैली में संवारे हुए केश मुकुट के नीचे से निकले हुए दिखाई देते हैं। प्रतिमा का निम्न ओष्ठ ताम्र जड़ित हैं। मस्तक पर वृहद्‌ाकार, तिलक, मेखला द्वारा कसी हुई धोती घुटनों से नीचे तक लटक रही है। धोती के मध्यभाग में एक लघु वस्त्र (पर्यसत्व) बंधा है। भुजबंध, मणिमाल, चौड़ा स्वर्णहार आदि प्रतिमा को शाही सौंदर्य एवं गौरव प्रदान करते हैं।

द्वितीय प्रतिमा पादपीठ के मध्य अभिलेखांकित कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित है। अभिलेखानुसार ईसा के ५५० वर्ष पूर्व यह प्रतिमा चंद्रकुल की महिला का धर्मोपहार था। जीवंत स्वामी की यह प्रतिमा पूर्व प्रतिमा की भांति ही मणिमय स्वर्णमाल, भुजबंध, ग्रीवा में मनोहर एकावलि

तथा धोती दुहरे चूड़ामणि युक्त पर्तों से विभाजित है। उपरोक्त अलंकरणों तथा अभिलेख के आधार पर यह प्रतिमा ईसा के कुछ शताब्दि पूर्व निर्मित प्रतीत होती है। अंकोट के अतिरिक्त राजस्थान के कुछ जिनालयों में जीवंत स्वामी प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। कथा पुराणों में जीवंत स्वामी प्रतिमा की एक कथा भी वर्णित है।

चंदन काष्ठ निर्मित जिन प्रतिमा- महावीर के समय में वीतभयपत्तन के नृपति उद्दायण की रानी चंदन काष्ठ निर्मित भगवान महावीर स्वामी की पूजा किया करती थीं। कुछ काल पश्चात अवन्ति नरेश प्रद्योत उस प्रतिमा को उठा लाया व कालांतर में उसे पूजा-अर्चना हेतु विदिशा में प्रतिष्ठित कर दिया। साथ ही उस प्रतिमा की अनुकृति वीतभय पत्तन में विराजमान कर दी। महान भाष्यकार श्री हेमचंद्राचार्य ने अपनी कृति- 'त्रेषठ शलाका पुरुष चरित' में आगे का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है- इससे ज्ञात होता है कि कालांतर में इस प्रतिमा की पूजा विदिशा में भैल्लस्वामिन के रूप में होने लगी तथा वीतभयपत्तन वाली अनुकृति एक रेतीली आंधी में दबकर नगर के साथ ही लुप्त हो गई। बाद में उद्दायण के अधिकारियों ने चंदन काष्ठ की इस प्रतिमा को खोज निकाला व पत्तन के नवनिर्माण के साथ इसे भी मंदिर में स्थापित कर दिया गया। उद्दायण को धर्मोपदेश देने हेतु भगवान महावीर ने वीतभयपत्तन की यात्रा भी की थी।

जिन माता प्रतिमा- तीर्थंकर या जिन माता प्रतिमा दो प्रकार की पाई जाती हैं। प्रथम प्रकार में जिन माता को गर्भधारण की रात्रि के अन्तिम प्रहर में दिखाई दिए १६ स्वप्न, कोमल शय्या पर लेटी हुई जिन माता की प्रतिमा के ऊपर अर्द्ध चंद्राकार या एक पंक्ति में उत्कीर्ण किये जाते हैं। जागने पर वे महाराज से अपने स्वप्नों का वर्णन करते हुए अपने स्वप्नों का फल बताने हेतु निवेदन करती हैं। महाराज स्वप्न शास्त्र के अनुसार उनके स्वप्न के फल स्पष्ट करते हुए बताते हैं- 'हे देवि' तुमने सर्वप्रथम ऐरावत हाथी, २. गंभीर शब्द करता श्वेत वृषभ, ३. चंद्रमा के समान श्वेत सिंह ४. कमलासन पर विराजमान लक्ष्मी जिसका दो हाथी अभिषेक कर रहे हैं ५. भृंगों-भंवरों से गुंजायमान दो मालाएं ६. तारागण सहित पूर्ण चंद्र ७. उदयांचल से उदित होता सूर्य ८. कमलपुष्पों से आच्छादित दो स्वर्ण कलश, ९. तालाब में क्रीड़ारत मछलियां १०. कमल पुष्पों से पूरित तालाब ११. उत्ताल तरंगों से पूर्ण गंभीर गर्जन करता समुद्र १२. रत्नजटित स्वर्ण सिंहासन, १३. रत्नों से देदीप्यमान स्वर्गीय विमान, १४. पृथ्वी को छेदकर ऊपर आता हुआ नागेन्द्र का विमान, १५. तेज से झिलमिलाती रत्न राशि व १६. निर्धूम अग्नि आदि देखे इन स्वप्नों का फल इस प्रकार है - हे देवि, तुम्हारे एक उत्तम पुत्र होगा, वह समस्त लोक में श्रेष्ठ होगा, अनंत बलशाली होगा, धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करने वाला होगा, देवता उसे सुमेरु पर्वत पर ले जाकर उसका क्षीरोदधि ज़लसे अभिषेक करेंगे, वह समस्त लोकों को आनंद प्रदान करने वाला

होगा, बड़ा प्रतापी व अनेक निधियों का स्वामी होगा, सदा सुखी रहेगा, अत्यंत तेजस्वी होगा, अनेक निधियों का स्वामी होगा, केवलज्ञानी होगा, जगत गुरु का पद एवं अनेक उपाधियों का धारी होगा, वह स्वर्ग से अवतरित होगा, जन्म से ही अवधिज्ञान का धारी होगा, कर्म रूपी ईंधन को जलाने वाला होगा तथा अंत में श्वेत वृषभ को मुख में प्रवेश करने का अर्थ है कि साक्षात् जिन भगवान ही तुम्हारे गर्भ में अवतरित होंगे।' ऐसी १६ स्वप्न संयुक्त जिन माता प्रतिमाएं देवगढ़ मंदिर आदि कुछ प्राचीन स्थलों पर उपलब्ध होती हैं।

दूसरे प्रकार की जिन माता प्रतिमाओं में तीर्थंकर के जन्म के पश्चात का दृश्य अंकित होता है। इसमें माता पर्यंक पर लेटी हुई हैं। पलंग की चादर व तकिया अलंकृत हैं। बगल में एक छोटे तकिए पर सिर रखे शिशु-जिन लेटे हुए हैं। महिला के सिर के पीछे भामण्डल है तथा चार सेविकाएं जो 'हरिवंशपुराण' के अनुसार रूचकप्रभा, रूपकामा, रुचिका तथा रुचिकोज्वला-नामक चार विद्युत कुमारियां है, भगवान के जातकर्म में सहायता करती हैं, उनकी सेवा करती हैं। उनके हाथों में चंवर आदि उपकरण हैं। गडरमल मंदिर, बडोह (जिला विदिशा) के उत्खनन काल में, भग्नावशेषों में दबी, बालक सहित एक लेटी हुई नारी प्रतिमा प्राप्त हुई थी। पुरातत्व के अनुसार यह जिन माता त्रिशला देवी व महावीर की मूर्ति स्वीकार की गई थी। शय्या के नीचे निर्मित सिंह जैन मूर्ति कला के अनुरूप है। इससे सिद्ध होता है कि लोक भाषा में गडरमल मंदिर कहा जाने वाला यह स्थल जैन मंदिर है। वर्तमान में यह जिनमाता प्रतिमा ग्वालियर के पुरातत्व संग्रहालय, गूजरी महल में प्रदर्शित है। बडोह के ही जैन वन मंदिर समूह के कोष्ठ नं. १३ में भी ऐसी ही जिन माता प्रतिमा बाहुबली आदि की प्रतिमाओं के साथ स्थापित है। यहां के एक प्रस्तर चौखट पर वि.सं. ११९३ का आलेख उत्कीर्ण है जिससे इन प्रतिमाओं की प्राचीनता प्रमाणित होती है।

समाधान मांगते प्रश्न

(वयोवृद्ध समाजसेवी, चिन्तक–विचारक श्री जमनालाल जैन (सारनाथ) ने हमें कुछ ज्वलंत प्रश्नों की एक लम्बी सूची भेजी है। हमारे अनुरोध पर शिथिल स्वास्थ्य तथा बढ़ती दृष्टि–मंदता के बावजूद वयोवृद्ध बन्धुवर जस्टिस श्री एम. एल. जैन (नई दिल्ली) ने इन प्रश्नो के समाधान प्रस्तुत किए हैं। स्थानाभाव के कारण हम कुछ ही प्रश्न व उनके समाधान इस अंक में दे पा रहे हैं। शेष क्रमशः प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे। यदि कोई विज्ञ पाठक इन समाधानों से सहमत न हों, तो वे भी अपना दृष्टिकोण (जो शास्त्रोक्त ही होना चाहिए) प्रस्तुत करने के लिए सादर आमंत्रित हैं– सम्पादक)

प्र. १– मानव शरीर के विभिन्न अवयवों या अंगों का अब वैज्ञानिक तरीके से, सर्जरी से प्रत्यारोपण होने लगा है। हृदय तक का प्रत्यारोपण होने लगा है। चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई है। ऐसी स्थिति में, अनेक सुविधाओं के कारण आयु भी बढ़ने लगी है। तब आयु नामक कर्म की क्या स्थिति रह जाती है ?

उ.– शल्य चिकित्सा का सबंध प्रत्यक्ष रूप से तो नामकर्म व वेदनीय कर्म से है, दूसरे यह कि आयुकर्म का उत्कर्ष नहीं होता है– अकाल मृत्यु में उसका जरूर अपकर्षण होता है। यदि किसी का आयु कर्म अभी शेष है तो उचित शल्य चिकित्सा से आयु बढ़ती नहीं है, आयु की अवधि तक ही जीवित रह सकता है कोई। शल्य चिकित्सा मे आपरेशन टेबल पर ही मर जाता है कोई और बाद में भी उतनी ही देर जीवित रह सकता है कोई जब तक आयुकर्म शेष हैं। यदि आयुकर्म शेष नहीं हैं तो आपको चिकित्सा या तो मिलगी नहीं; या कारगर नहीं होगी। स्व. श्री साहू अशोक जैन की आयु चिकित्सा के बावजूद नहीं बढ़ पाई।

प्र. २– आठ कर्मों में गोत्र नामक कर्म भी है। उच्च और नीच गोत्र के कर्म किस आधार पर बने हैं ? क्या इस मान्यता पर वर्ण व्यवस्था का प्रभाव नहीं है ? अनेक देशों में वर्ग–भेद, रंग–भेद तो हैं, पर जाति या गोत्र या वर्ण जैसी स्थिति नहीं है। गोत्र कर्म की अब क्या स्थिति बनती है ?

प्र. ३– इसी प्रकार आर्य और म्लेच्छ भेद किए गए हैं। विदेशी या माँसाहारी प्रजा म्लेच्छ है, तो प्रश्न उठता है कि वे तथाकथित आर्यों (भारतीयों) से अधिक स्वस्थ, सम्पन्न, साहसी, निर्भीक, शोधकर्ता, अन्वेषक, आविष्कारक, चिन्तक, विचारक कैसे हैं ? क्या उनका जन्म विदेशों में पूर्व जन्म के पुण्य के कारण हुआ है ? और इसके विपरीत हम भारतीय क्या पूर्व पापोदय के कारण भारत में उत्पन्न हुए हैं ? और जो दुख–कष्ट से पीड़ित जन विदेशों में चले गए क्या उनका पापकर्म समाप्त हो गया ?

प्र. ४– क्या उन सम्पन्न, शक्तिशाली देशों की अपेक्षा अब भारत जैसे 'महान' (?) देश में जन्म लेना पुण्य कर्म का द्योतक नहीं रहा?

(समाधान की पृष्ठभूमि पर जस्टिस जैन का स्पष्टीकरण)

जवाबों की कोशिश करने के पहले पृष्ठभूमि के रूप में कुछ मूलभूत बातों पर जोर देना चाहता हूँ–

१. ब्राह्मण विद्वान जब जैन धर्म को समर्पित हुए तो वेद, वेदान्त, स्मृति, पुराण, न्याय, ज्योतिष, आदि का ज्ञान अपने साथ लाए और उसका व्यवस्थित रूप से जैनीकरण कर डाला। इसलिए विसंगतियां दिखाई देती हैं– पारिभाषिकता का आधिक्य, सरलता का अभाव।

२. दिगम्बर जैन शासन समयानुकूल वाचना करके अपने शास्त्रों में यथोचित परिवर्तन करना टालता रहा है।

३. कर्म सिद्धान्त मूलतः व मुख्यतः 'स्व' वादी, व्यक्ति परक है, समष्टि परक बाद में।

४. सब धर्मों में अच्छाइयां व बुराइयां हैं। फिर भी जैन दर्शन में एक विशेषता है. –अनेकान्त दर्शन, जिसका अनुवाद मैं comprehensive perspective करता हूँ।

अब सवालों के जवाब–

उ. २, ३, ४– ये सवाल गोत्र कर्म के बारे में हैं। वर्ण भेद को गोत्र कर्म के दायरे में समझने की जरूरत है। संसार में व्यक्तियों में जो असमानता है उसमें अवश्य ही वंश का याने ऊंच–नीच गोत्र का हाथ रहता है, परन्तु इसके अलावा अंतराय व नाम कर्म का भी हाथ होता है, वर्ना अस्पृश्य दलित आज उच्चासन ग्रहण नहीं कर सकते थे। (जिनसेन के अनुसार, ऋषभदेव किसी क्षत्रिय वंश में पैदा नहीं हुए थे बल्कि उनने अपने वंश को क्षत्रिय घोषित कर लिया। राजा व तीर्थंकर दोनों होने से वे यह कर सके–नई व्यवस्था की नींव जो डाल रहे थे ! खैर।)

यही बात उस व्यक्ति पर लागू होती है जो किसी सम्पन्न देश (चाहे म्लेच्छ देश ही हो) में जाकर अपनी गरीबी से पार पा लेता है। यह समझना भूल होगी कि जिन्हें हम सम्पन्न देश कह रहे हैं वहाँ गरीबी नहीं है। वहाँ भी भारत की भांति उच्च श्रेणी के वंश और ग़रीब, अपराधी, डरपोक व बेवकूफ श्रेणी के लोग बसते हैं। हां, वहां मानवों को वर्णों में नहीं बांटा जाता परन्तु वहां रंग भेद तो है ही। वंश (race) भेद तो बड़ा ही उग्र है। भारत में भी गोरे आर्यों ने ही वर्ण (रंग) भेद कायम किया था।

किसी देश की महानता उसकी स्थिति, विस्तार, सम्पदा, इतिहास, परम्परा, शौर्य, श्रम, चिन्तन, सम्पन्नता आदि खूबियों की समष्टि पर आश्रित होती है। भारत इस दृष्टि से महान रहा है, है परन्तु यह भ्रम कि भारत ही महान है सही नहीं है। अन्य कई देश यथा मिश्र, यूनान, चीन आदि भी महान देश रहे हैं। जब मैं भारत को महान

कहता हूं तब मेरे ध्यान में भरत–बाहुबलि विवाद, सीता का उत्पीड़न, द्रुपद सुता का अपमान, महाभारत, शूद्रों और स्त्रियों का अपमान, शैव, वैष्णव, बुद्ध व जैन के धर्म संघर्ष जैसे अपवाद भी हैं।

जैन धर्म के अनुसार भारत या और किसी महान देश में पैदा होना कर्म की शुभ प्रकृतियों का परिणाम है। फिर भी यह याद रहे कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इस भावना का जैन धर्म से कोई विरोध नहीं है।

प्र. ५– दर्शनावरणीय और ज्ञानावरणीय कर्मों की सीमा रेखा कहाँ से बनती है और कहाँ टूटती है? अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि देशों में तो एक तो अंधों क़ी संख्या ही अत्यल्प है, फिर अब तो नई आंखें भी प्रत्यारोपित होने लगी हैं। तो क्या उन देशों की जनता चक्षुदर्शन जैसे कर्म से मुक्त हो गई है ? भारत जैसे देशों में भी चश्मे तो लगते ही हैं, आंखें भी लगने लगी हैं। इसी तरह ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में प्रश्न उठता है कि जहां तक साधारण शिक्षा या साक्षरता की बात है, यूरोप आदि में शत प्रतिशत शिक्षित हैं। केरल में भी अट्ठानवे प्रतिशत हैं। तो क्या कहा जाए कि ज्ञान की दृष्टि से भी भारत पर ज्ञानावरणीय कर्म की टेढ़ी नजर है ?

उ. ५– आंख की बीमारी का दर्शनावरण कर्म या ज्ञानावरण कर्म से कोई वास्ता नहीं है– यह नाम कर्म की करामात है। चूंकि कर्म सिद्धान्त व्यक्ति (आत्मा) परक है– इसलिए किसी देश में अंधों की संख्या से इसका संबंध नहीं है। देश की आत्मा, गौरव, हीनता, सम्पन्नता ये शब्द समाज–शास्त्र और काव्यमयी भाषा से ताल्लुक रखते हैं। यह महज एक संयोग है कि किसी प्रदेश में नाबीना अधिक हैं, चक्षु विज्ञान की तरक्की के पहले वहाँ भी चक्षुहीन लोग हुआ करते थे, आज भी हैं।

अलबत्ता साक्षरता का ज्ञानावरण से अधिक व साधनों के अभाव में अन्तराय कर्म से भी ताल्लुक है। अंधे सूरदास और बेपढ़े लिखे सम्राट अकबर के लिए यह कहना कठिन है कि वे पढ़ लिखने से मजबूर होते हुए भी ज्ञानशून्य थे, वे किसी साक्षर से क्या कम थे ? नाभिराय के जमाने में तो लिखने पढ़ने का रिवाज था ही नहीं। निरक्षरता सारे समाज का ज्ञानावरण नहीं है। पृथक्–पृथक् व्यक्तियों पर अलग–अलग उसका असर होता है।

प्र. ६– इसी तरह वेदनीय कर्म का साता विभाग विदेशों ने अपना लिया और असाता कर्म भारतीय अध्यात्मवादियों, निवृत्ति मार्गियों, नियतिवादियों और दीन–हीन गरीबों के सिर पर हावी हो गया कि न उन्हें पोषक भोजन मिलता है, न शुद्ध पेयजल। न औषधि मिलती है, न ढंग से रहने को स्थान। ऐसा क्यों?

उ. ६– साता और असाता वेदनीय कर्म के विषय में भी यही बात है। जहां तक पोषक भोजन, शुद्ध पेयजल, औषधि आदि की बात है इनसे व्यक्ति वंचित होता है अन्तराय कर्म के कारण। हाँ, यह कह सकते हैं, कई अपने–अपने अन्तराय कर्म से सताए हुए एक ही जगह एकत्र हो गए–यह महज एक संयोग है। यह ध्यान में रखना

चाहिए कि सृष्टि की रचना ऐसी क्यों हुई कि कहीं रेगिस्तान, कहीं पहाड़, कहीं समुद्र, कहीं नदियां, कहीं उपजाऊ आराजी भूमि इन पर कर्म का सिद्धान्त लागू नहीं होता। दरअसल बुद्ध व महावीर दोनों के पास इसका उत्तर नहीं था। बुद्ध ने कहा यह अनन्त है–न कोई शुरुआत न कोई अंत। जो है वह सामने है। दरअसल सारी पृथ्वी का पता भी उनको नहीं था। वे तो पृथ्वी को चपटी कह गए और नक्षत्रों को देव विमान, लेकिन आज भी मुनिगण, पण्डितगण मिथ्यादर्शन याने दर्शनावरण के कारण वही रट लगाए हैं और श्रावकों को समुचित जवाब नहीं दे पाते। इसको मैं कहता हूँ कि यह है ज्ञानावरण की करतूत जो समझाने पर भी नहीं समझते।

दर्शनावरण व ज्ञानावरण या अन्य कर्म ऐसी कोई फौजें या बीमारियां नहीं हैं जो एक साथ किसी समाज या देश–विदेश पर हमला कर उसे अपने शिकंजे में ले लें। इनका संबंध भी पृथक्–पृथक् आत्माओं से है।

श्री लालचंद जैन के प्रश्न

(धर्मनिष्ठ श्री लालचंद जैन (टिकैतनगर) ने भी हमें कुछ प्रश्न भेजे हैं जो कुछ पिच्छीधारियों एवं प्रतिष्ठाचार्यों द्वारा उनकी समाज में खड़े कर दिये गए हैं। विज्ञ पाठक इनका शास्त्रोक्त समाधान प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित हैं – – सम्पादक)

(१) क्या जिनेन्द्रदेव का समवशरण विहार मुहूर्त शोध कर किया जाता है ?

(२) क्या जिन बिम्ब, जिन मंदिर कोण, दिशा, स्थान, ऊंचाई आदि के विचार से जिन भक्तों के लिए तथा अन्य ग्रामवासियों के लिए कभी भी या किसी स्थिति विशेष में अमंगल कारी या अनिष्टकारी हो सकते हैं ?

(हमारे टिकैतनगर के प्राचीन दि. जैन मंदिर का दक्षिण दिशा की ओर विस्तार पिछले ५० वर्षों में दो बार किया जा चुका है और अब तीसरा विस्तार भी उसी दिशा में पिछले छह वर्षों से किया जा रहा है तथा इसके अन्तर्गत एक नवीन दो मंजिलें मंदिर–भवन का निर्माण किया गया है जिसमें दोनों मंजिलों में वेदियां बनाई गई हैं तथा नवीन मदिर को प्राचीन मंदिर से एक सुन्दर पुल व सीढ़ियो से जोड़ दिया गया है। अब कतिपय पिच्छीधारी तथा प्रतिष्ठाचार्य वास्तुशास्त्र का आधार लेकर इस सम्पूर्ण नव निर्माण को समाज तथा पूरी बस्ती के लिए अमंगलकारी बता कर समाज को दिग्भ्रमित कर रहे हैं तथा सलाह दे रहे हैं कि पुल व सीढ़ियों को तोड़ दिया जाय तथा नवीन मंदिर–भवन का उपयोग मंदिर के बजाय और किसी काम में किया जाय।)

सामयिक परिदृश्य-

क्षणिकाएं

— रमाकान्त जैन

भाग्योदय हो रहा अब शाकाहार प्रचारकों का
तीर्थ पर ऐसी पुस्तकें बेची जा रही।
मछली, मांस आदि सेवन से सुन्दर–स्वस्थ
कैसे बनें, समुचित जानकारी दी जा रही।।१।।

आज चित्र कितने विचित्र हो गये।
प्राणीमित्र प्राणी हिंसकों के मित्र हो गये।।
यह वर्ष 'अहिंसा वर्ष' घोषित कर दिया उन्होंने।
देश को बूचड़खानों से पाट दिया उन्होंने।।२।।

हमारी कथनी–करनी का फर्क दिनोदिन बढ़ रहा है
नेतागिरी का नशा हम पर खूब चढ़ रहा है
करनी में नहीं, कथनी में करते हैं हम विश्वास,
जिसके सहारे आत्मप्रचार हमारा क्या खूब बढ़ रहा है।।३।।

चिन्तन कण :

सही निर्वाण–स्थली पावा कहाँ ?

भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म महोत्सव के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय समिति द्वारा संस्तुत योजनाओं के अंतर्गत भगवान की जन्मस्थली–वैशाली–वासोकुंड (जो ऐतिहासिक–पुरातात्विक साक्ष्यों से सही जन्म स्थली सिद्ध हो चुकी है) तथा लछवाड़ (जिसे श्वेताम्बर आम्नाय परम्परा से जन्म स्थली मानती रही है) और निर्वाण स्थली के रूप में विख्यात पावापुरी के तीर्थक्षेत्रों के विकास पर भारत सरकार द्वारा चार करोड़ रुपये के व्यय का निर्णय लिया गया है।

यद्यपि गंगा के दक्षिण में स्थित राजगिर के निकट नालन्दा जिलान्तर्गत यह पावापुरी आज भगवान की निर्वाण स्थली के रूप में बहुमान्य है तथा सुप्रसिद्ध जल मंदिर सहित अनेक भव्य मंदिरों एवं धर्मशालाओं का वहाँ उभय समाज (श्वेताम्बर व दिगम्बर) द्वारा निर्माण हुआ है तथापि इसका इतिहास मात्र ८०० वर्ष पुराना है। ८०० वर्ष पूर्व की कुछ शताब्दियों में धार्मिक द्वेष एवं अराजकता के दौर में बिहार प्रदेश में जैन धर्मावलंबियों का व्यापक संहार किया गया था तथा बचे खुचे को वहां से पलायन करना पड़ा था। उस काल में प्रायः सभी जैन तीर्थक्षेत्रों को पूरी तरह विध्वंस कर दिया गया था।

लगभग ८०० वर्ष पूर्व सौराष्ट्र से श्री संघ सहित तीर्थ यात्रा पर निकले एक (श्वेताम्बर जैन) आचार्य ने भगवान महावीर स्वामी के जन्म–केवलज्ञान–निर्वाण स्थलों को चिन्हित करने का प्रयास किया था और उन्होंने अनुमान से वर्तमान पावापुरी स्थल को भगवान की निर्वाण स्थली घोषित कर दिया था। कदाचित् ये आचार्य श्री अभयदेव सूरि जी ही थे जिनके द्वारा वि.सं. १२६० में प्रतिष्ठित कराए भगवान के चरण जल मंदिर, जो क्षेत्र का सर्वाधिक प्राचीन मंदिर है, में स्थापित हैं। जल मंदिर का मूल निर्माण भी तभी का कराया गया प्रतीत होता है।

किन्तु यह पावापुरी तो मगध देश की राजधानी राजगृह से मात्र कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर स्थित है जबकि मल्ल क्षत्रियों का गणराज्य (जिसकी प्रमुख नगरी पावा व कुशीनगर थी) लिच्छवियों की वैशाली के समान गंगा के उत्तर के प्रदेश में जो मध्य प्रदेश कहलाता था, स्थित थी। मगध के एक–छत्र दुर्दान्त सम्राट अजातशत्रु ने वीर निर्वाण के कुछ ही वर्ष पूर्व वैशाली के बलशाली गणराज्य का पूर्ण विध्वंस कर दिया था तथा यह अकल्पनीय है कि उसकी राजधानी के सन्निकट किसी स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व रहा हो।

१६वीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के प्रमुख अधिकारी जनरल ए. कनिंघम तथा उनके सहायक ए.पी. कार्लाइल के द्वारा की गई खोजों

(१८७६–७७ ई.) तथा दिए गए तर्कों ने यह सिद्ध कर दिया कि भगवान की सही निर्वाण स्थली तथा मल्ल क्षत्रियों की राजनगरी पावा के अवशेष उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले में कुशीनगर से १६–१७ कि.मी. दूर वैशाली के प्राचीन राजमार्ग पर स्थित सठियाव डीह– फाजिलनगर के विस्तृत क्षेत्र में फैले प्राचीन टीलों के नीचे दबे पड़े हैं। वर्तमान में प्रायः सभी इतिहासवेत्ताओं एवं (दि.) पुरातत्त्वविदों एवं प्रमुख जैन आचार्यों यथा आचार्य श्री देशभूषण म., आ. श्री विमलसागर म., आ. श्री विद्यानंद मुनि म., आ. श्री भरतसागर म., (स्था.) आ. श्री हस्तिमल म., आ. डॉ. नगराज जी, (श्वे.) आ. श्री विजयेन्द्र सूरि जी आदि ने भी इस मत को स्वीकार किया है। विद्वानों का यह भी मानना है कि सठियांव 'श्री पावा' का ही अपभ्रंश रूप है। इस नाम की एक सील भी यहाँ उत्खनन में प्राप्त हुई है।

दिगम्बर जैन समाज ने इन खोजों की यथार्थता स्वीकार कर वहां कुशीनगर जनपद स्थित सठियावडीह में पावानगर तीर्थक्षेत्र का निर्माण किया है तथा सन् १९९६ में वहां पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन भी किया जा चुका है। अभी इस क्षेत्र पर एक जिन मंदिर, कीर्तिस्तंभ तथा धर्मशाला का निर्माण हुआ है। यह क्षेत्र भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी से सम्बद्ध है तथा एक क्षेत्र कमेटी भी इसके प्रबंध एवं विकास में कार्यरत है।

२०वीं शती के चौथे दशक में एक स्थानीय वैष्णव संत बाबा राघवदास ने कनिंघम– कार्लाइल की खोजों के आधार पर इसे भगवान महावीर की सही निर्वाणस्थली स्वीकर कर उनकी स्मृति में एक भगवान महावीर हाईस्कूल की स्थापना की थी जिसे राज्य सरकार ने भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में सन् १९७४–७५ में उन्नत कर डिग्री कालेज कर दिया है। (बाबा राघवदास ने सन् १९४६–४७ में इन पंक्तियों के लेखक से उ.प्र. सचिवालय में भेंट भी की थी)

वर्तमान में पावानगर में भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव विशेष धूमधाम से मनाया जाता है, तीर्थयात्रियों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है।

हमें भारत सरकार द्वारा नालन्दा जिलान्तर्गत पावापुरी का विकास किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं है। भगवान की निर्वाणस्थली न होते हुए भी यह भव्य जिन मंदिरों को संजोए हुए तथा लाखों श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र एक अतिशय क्षेत्र तो है ही। पर हमारा आग्रह है कि भगवान के २६००वें जन्म महोत्सव वर्ष में उनकी सही निर्वाणस्थली पावानगर की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए तथा न केवल इसका भगवान की निर्वाण भूमि के अनुरूप समुचित विकास किया जाना चाहिए, वरन् वहां के प्राचीन ऐतिहासिक टीलों का भी भारत सरकार द्वारा उत्खनन कराया जाना चाहिए।

– अजित प्रसाद जैन

जैन दर्शन और शास्त्र

– धन्यकुमार जैन, सिहोरा (जबलपुर)

जैन दर्शन में शास्त्रों का स्थान नहीं और न जैन आचार्यों ने शास्त्र लिखे। शास्त्रों की रचना सम्यक् ज्ञान के अभाव होने पर देश-काल की, परिस्थितियों से प्रभावित होती गई है। जो जैन दर्शन के विपरीत विकृत रूप में है। जैन दर्शन आत्मिक सुख पाने की क्रिया होने का अन्तकर परम सुख पाने का मार्गदर्शक है। शास्त्र सुख-दुख का ज्ञान कराकर संसारी सुख पाने का साधन है। दुख ज्ञात होने से होता है। ज्ञान न हो तो जीव को दुखों की अनुभूति न होगी। जीव में क्रिया दर्शन, ज्ञान, चारित्र के क्रम से बंधी होती है। जो जीव जैसा जितना अपनी प्राप्त इन्द्रियों से देख जान पाता है, वह अपने देखे जाने के अनुरूप स्वयं परिणमित हो जाता है। यही जीव में हुई यथार्थ परिवर्तन की क्रिया जीव के दुखों के होने का कारण है। अतएव जो जीव जैसा होना चाहता है, उसे उसी के अनुरूप देखना जानना होगा। इसी आधार पर जैन आचार्यों ने शास्त्रों की रचना न कर तीर्थंकरों की वीतरागी शान्त मुद्रा की मूर्तियां बनाकर उनकी मुद्रा के दर्शन करने का प्रावधान किया है। यही कारण है जैन मूर्तियों का बहु संख्या में होना तथा विभिन्न आकार प्रकार की होते हुए भी सभी मूर्तियों का एक सी वीतरागी शान्त मुद्रा का होना। जो आज भी देश-काल परिस्थितियों से अप्रभावित हो पूर्ववत जैन दर्शन के अपने मूल रूप को बनाये हैं। जिन्हें स्वयं देखकर सम्यक् ज्ञान और श्रद्धान होता है। दर्शन दर्शक को एकाकी और स्वतंत्र करता है। जो जीव का अभीष्ट लक्ष्य है। खेद है कि आज दर्शक मूर्ति मुद्रा के दर्शन न कर मूर्ति के सौष्ठव को देखने में लगा रागी द्वेषी होने पर भी अपने को वीतरागी मार्ग पर चलने वाला मानता है। शास्त्र लिखने, कहने, सुनने व्याख्या करने वालों के भावों और ज्ञान से प्रभावित हो अपने मूल रूप में नहीं रह जाता है। शास्त्र में लिखा कहने और सुनने वालों पर आश्रित होने से कहने और सुनने वाले दोनों को पराश्रित करता है। जबकि जीव को होना स्वतंत्र पता है। आग्रह है मुनि वर्ग और विद्वानों से कि उपरोक्त का मूल्यांकन कर अपने और श्रावकों को अज्ञान पथ पर चलने से रोकने के लिये मूर्तिमुद्रा के दर्शन करने का महत्व प्रतिपादित करें। दर्शन करने में ज्ञान आवश्यक नहीं। आवश्यक है इन भावों के होने की 'कि प्रभु मैं तुम सा हुआ चाहता हूँ।'

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २०००–२००१

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. (रजिस्टर्ड) की स्थापना सन् १६७६ में उ.प्र. शासन की 'श्री महावीर निर्वाण समिति' की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में की गई थी। तब से समिति अपनी सभी प्रवृत्तियों का सुचारु संचालन करते हुए निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष १६६६-२०००) शोधादर्श-४२ (नवम्बर २०००) के पृष्ठ ३०१-३०४ पर प्रकाशित है।

विगत वर्ष (१ अप्रैल, २००० से ३१ मार्च, २००१) में भी समिति की सभी प्रवृत्तियां पूर्ववत सुचारु रूप से सम्पादित की जाती रही हैं। संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

(१) ती.म. स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय- विगत वर्ष में पुस्तकालय में रु.३६,१६६ मूल्य की ६०७ पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें रु. २,८६८/- मूल्य के ६१ धार्मिक ग्रन्थ थे। धर्म साहित्य के अतिरिक्त अन्य सभी पुस्तकें राजा राम मोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान कलकत्ता तथा उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के पुस्तक अनुदानों के रूप में और कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप ही प्राप्त हुई हैं। अधिकांश धर्म साहित्य भी विभिन्न दातारों व लेखकों से भेंट स्वरूप ही प्राप्त हुआ है। पुस्तकालय तथा कार्यालय के रख रखाव पर (स्टेशनरी व डाक व्यय साहित्य) कुल रु. ८,६८५-७५ पैसे व्यय किया गया। इस वर्ष भी पुस्तकालय का संचालन मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट के सौजन्य से निःशुल्क उपलब्ध कराए गए कक्ष में ही होता रहा जिसके लिए हम धर्मशाला ट्रस्ट के आभारी हैं।

धर्मशाला ट्रस्ट ने धर्मशाला के भूतल पर पुस्कालय के प्रयोजन से एक बड़े कक्ष का निर्माण करा दिया है जिसे एक संलग्न कक्ष सहित रु. ८०० मासिक किराए पर उपलब्ध करा लिया गया है तथा १ अप्रैल २००१ से पुस्तकालय को नवीन कक्षों में स्थानान्तरित कर दिया गया है।

(२) शोधादर्श- समिति की चातुर्मासिक शोध पत्रिका **शोधादर्श** की लोकप्रियता में निरंतर वृद्धि हुई तथा समाज की पत्र-पत्रिकाओं में इसने अपना विशिष्ट स्थान बनाए रखा। इस वर्ष के तीनों अंकों (४०-४२) के ३८६ पृष्ठों में प्रकाशित उपयोगी सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना की गई। अंक ४२ में पिछले सभी अंकों के लेखादि की अनुक्रमणिका भी प्रकाशित की गई। अपने दोनों सहयोगियों- डॉ. शशिकांत तथा श्री रमाकान्त जैन द्वारा पत्रिका के सम्पादन/ प्रेषण में तथा आजीवन सदस्य श्री नलिनकांत जैन द्वारा पत्रिका की मुद्रण व्यवस्था सम्हालने में दिए गए महती योगदान के हम अत्यन्त आभारी हैं।

हमें भारी खेद है कि प्रबंध समिति के पुस्तकालय स्थानान्तरण विषयक निर्णय से असहमत होने तथा उसे समिति के हितों के प्रतिकूल मानते हुए डॉ. शशिकान्त ने प्रबंध समिति की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया तथा शोधादर्श से भी अपना संबंध विच्छेद कर लिया। शोधादर्श के अंक ४२ के बाद के अंक हमें व श्री रमाकान्त को ही निकालने पड़े हैं। शोधादर्श को एक स्तरीय शोध पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित कराने में डॉ. शशिकान्त जी ने जिस श्रम व लगन से अपना महती योगदान किया वह अविस्मरणीय रहेगा। शोधादर्श के लिए उनका अभाव अपूरणीय क्षति है। समिति के संयुक्त महामंत्री के रूप में समिति की अन्य सभी प्रवृत्तियों के संचालन में तथा समिति कार्यालय का भार संभालने में भी उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए हम उनके सदा आभारी रहेंगे।

(३) तीर्थंकर छात्र सहायता कोष- विगत वर्ष में समाज के ३२ छात्र-छात्राओं को अध्ययन सहायता प्रदान करने में रु. १२,६५८ का व्यय किया गया। सहायता वितरण का सारा कार्य प्रबंध समिति के सदस्य श्री महेन्द्र प्रसाद द्वारा हमारे मार्गदर्शन में किया गया। हम उनके सहयोग के लिए आभारी हैं।

(४) महावीर जन कल्याण निधि- विगत वर्ष में दो जरूरतमंद महिलाओं को वस्त्र-औषधि क्रय हेतु सहायता प्रदान करने पर रु. १२६०/- का व्यय किया गया।

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी सर्वश्री ए.जिन्दल चार्टर्ड एकाउंटेन्ट्स द्वारा किया गया। पुस्तक अनुदानों के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां रु. ६७,६७२-७८ तथा व्यय रु.१,०३,२४६.७५ हुआ। प्राप्ति-व्यय का विवरण अगले पृष्ठ पर अंकित है।

समिति के संयुक्त मंत्री- सह-सम्पादक शोधादर्श, डॉ. शशिकान्त को जैमिनी अकादमी, पानीपत द्वारा दि. १३ सितम्बर, २००० को पानीपत में हिन्दी दिवस की पूर्व संध्या में आयोजित एक भव्य समारोह में **'बीसवी शताब्दि रत्न'** के सम्मान से अलंकृत किया गया। डाक्टर साहब के इस सम्मान से समिति तथा शोधादर्श गौरवान्वित हुए हैं।

चिर वियोग- विगत वर्ष हमारे आजीवन सदस्य सर्वश्री मणिकान्त जैन व महावीर प्रसाद पाटनी, लखनऊ तथा डॉ० नरेन्द्र कुमार जैन, देहरादून का दुःखद निधन हो गया। इन सभी माननीय सदस्यों की समिति की गतिविधियों में सक्रिय रुचि रही थी। हम दिवंगत आत्माओं की सद्गति एवं चिरशांति की कामना करते हैं।

समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें निरन्तर मिलता रहा जिसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जैन, कोषाध्यक्ष श्री विजयलाल जैन, उपमंत्री श्री नरेश चंद्र जैन व श्री रमाकान्त जैन एवं प्रबंध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए हम आभारी हैं।

- अजित प्रसाद जैन, महामंत्री

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

RECEIPTS AND PAYMENTS ACCOUNTS FOR THE YEAR ENDING 31 MARCH, 2001

RECEIPTS		Rs. P.
To Balance b/d:		
F.D.R.s	1171913.00	
Savings Bank	24554.25	
Cash in Hand	4600.71	1201067.96
To Membership Fee		1352.00
To Magazine Subscription		2444.00
To Research Library Subscription		560.00
To Research Lib. Security Deposit		600.00
To Miscellaneous Receipts		337.50
To Interest on F.D.R.s		55427.28
To Savings Bank Interest		2917.00
To F.D.R. Maturity Interest		34224.00
To Donation		111.00
		1299040.74

		Rs. P.
By Research Library		
Salary	6350.00	
Contingencies	1264.00	7614.00
By Advance Rent _		50000.00
By Stationery		1084.75
By Postage		287.00
By Shodhadarsh Expenses		28446.00
By Jan Kalyan Nidhi Expenses		1260.00
By Scholarships		12958.00
By Bank Charges		400.00
By Audit Fee		1200.00
By Balance c/d:		
F.D.R.s	1121913.00	
S.B. Account	73810.53	
Cash in Hand	67.46	1195790.99
		1299040.74

A. P. JAIN
मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति
LUCKNOW
JULY 28, 2001

ALOK JINDAL
For A. JINDAL & CO.
Chartered Accountants

साहित्य सत्कार

१. समग्र जैन चातुर्मास सूची- (गजेन्द्र संदेश विशेषांक अगस्त-सितम्बर २००१:) संपादक व प्रकाशक- श्री बाबूलाल उज्ज्वल, १०५ तिरुपति अपार्टमेंट्स, आकुर्ली क्रास रोड नं. १, रेलवे फाटक के पास, बोरिवली (पूर्व), मुंबई-४००१०१; पृ.-३५०; मूल्य- रु. ५०/-

इस प्रकाशन में जैन धर्म की सभी आम्नायों (यथा-श्वेताम्बर-स्थानकवासी, तेरापंथी व मूर्तिपूजक तथा दिगम्बर आम्नाय) के वर्ष २००१ में चातुर्मास स्थापित किए हुए आचार्यों, साधुओं/मुनियों व आर्यिकाओं/साध्वियों की समग्र सूची प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही अनेक आचार्यों व साधुओं/साध्वियों के सचित्र संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनके द्वारा सृजित साहित्य की सूची भी दी गई है और कतिपय तालिकाओं के माध्यम से कुछ रोचक तथ्य भी प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित तालिका गत १५ वर्षों में चातुर्मासरत जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के मुनि-आर्यिकाओं की तुलनात्मक संख्या दर्शाती है :-

क्र. सम्प्रदाय का नाम	१९८६	१९९०	१९९५	२०००	२००१
१. श्वेताम्बर मूर्तिपूजक	५६९०	६१६२	६३३५	७२५७	७२७५
२. श्वे. स्थानकवासी	२६४६	२७३८	३००४	३१८१	३२६६
३. श्वे.तेरापंथी	७२१	७१६	६९१	६८२	६८८
४. दिगम्बर	३६६	३५५	५४५	६८५	८६६
कुल	*९४२६,*	*९९७४,*	*१०,५७५,*	*१२,१०५*	*१२,१०१*

(उपरोक्त के अतिरिक्त श्वेताम्बर समुदाय के प्रगतिशील विचारक २० मुनि व ३२ साध्वियां भी हैं जो प्रायः सभी वाहन विहारी हैं।)

इस वर्ष दिगम्बर सम्प्रदाय के ५३ आचार्य, ३ आचार्य कल्प, ४ ऐलाचार्य, १ बालाचार्य, १८ उपाध्याय, २८० मुनि, ३३ ऐलक, ६६ क्षुल्लक, व १० गणिनी आर्यिका, ३१७ आर्यिका तथा ६० क्षुल्लिकाओं के चातुर्मासरत रहने की सूचना प्राप्त हुई थी जो अपूर्ण थी। गत वर्ष से ३५ नई दीक्षाएं हुईं तथा १० का समाधिमरण हुआ। अतः सही कुल संख्या १०००-११०० के बीच होनी चाहिए। **विगत १५ वर्षों में दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनि/आर्यिकाओं में तीन गुना वृद्धि हुई है और कदाचित् इसी अनुपात में श्रमण संस्था के शिथिलाचार में भी वृद्धि हुई है तथा कुछ ही आचार्य-मुनि संघ इस विकृति से बच पाए हैं।**

स्थानकवासी श्रमण संघीय आचार्य सम्राट डॉ. शिव मुनि जी के आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियों की संख्या ११०८ (साधु २३२ तथा साध्वियां ८७६) किसी एक ही आचार्य के शासनाधीन सर्वाधिक है तथा इसी संघ में एम.ए., पी-एच.डी. आदि उच्च शिक्षा प्राप्त साधु-साध्वियों की भी सर्वाधिक संख्या (लगभग ४२) है। स्वयं आचार्य श्री डी.लिट् हैं।

सम्पूर्ण जैन समाज में दिगम्बर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का ही एकमात्र ऐसा विशाल समुदाय है जिसमें सभी १८४ मुनिराज/आर्यिकाएं बाल ब्रह्मचारी हैं। इनके अतिरिक्त आचार्य श्री की आज्ञा में लगभग १०० ब्रह्मचारी भाई तथा २०० ब्रह्मचारिणी बहिनें भी संयम जीवन का अध्ययन कर रही हैं।

इस प्रकार इस समग्र सूची में मुनि संघों के विषय में कई महत्वपूर्ण एवं रोचक जानकारियां उपलब्ध कराई गई हैं। सूची बहुत उपयोगी एवं संग्रहीय है।

२. भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय- मध्य प्रदेश (१३वीं शती तक) सम्पादक-लेखक-डॉ. कस्तूरचंद जैन 'सुमन'; प्र.- श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, डी-३०२, विवेक विहार, दिल्ली-११००९५; प्र. वर्ष-२००१; पृ.-३१३; मूल्य- रु. ८०/-

समीक्ष्य ग्रंथ में मध्य प्रदेश के ५३ स्थलों से प्राप्त ३०३ प्रतिमा लेख, यंत्र लेख, चरण लेख तथा मंदिर-द्वार भित्ति स्तम्भ लेखों का अध्ययन (मूल पाठ, पाठ टिप्पणी, भावार्थ, व्याख्या, अभिलेख परिचय आदि सहित) प्रस्तुत किया गया है। ये सभी अभिलेख १३वीं शती तक के हैं। सर्वाधिक प्राचीन विदिशा के निकट दुर्जनपुर में एक खेत से प्राप्त हुई तीन खंडित प्रतिमाओं पर अंकित तिथि विहीन लेख हैं जिनके अनुसार उन्हें महाराजाधिराज रामगुप्त द्वारा प्रतिष्ठित कराया गया था। नाम साम्य के आधार पर इन रामगुप्त को गुप्त वंशीय सम्राट समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र मानकर इन प्रतिमाओं की स्थापना सन् ३७५ ई. के लगभग अनुमानित की गई है। अभी तक प्राप्त कदाचित् ये ही ऐसे प्रतिमा लेख हैं जिनमें प्रतिष्ठा तिथि का उल्लेख नहीं है। ये महाराजाधिराज रामगुप्त कोई स्थानीय शासक भी कदाचित् हो सकते हैं क्योंकि समुद्रगुप्त पुत्र रामगुप्त (यदि उन्होंने कुछ महीने गुप्त साम्राज्य का शासन किया भी हो), का सुदूर मालवा में आकर तीन जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करना आश्चर्यजनक ही लगता है। अभिलेखों का अध्ययन विद्वत्तापूर्ण है तथा इस विषय के शोधकर्ताओं के लिए विशेष उपयोगी है।

३. श्री तारण तरण शब्द कोष : शब्दार्थ-व्रती श्रावक ब्र. जयसागर जी, सम्पादक-श्री राजेन्द्र सुमन; प्र.-अ.भा. तारण समाज तीर्थक्षेत्र महासभा; प्र.वर्ष-२०००; पृ. १०१; मूल्य रु. ३५/-

आध्यात्मिक संत तारण तरण स्वामी (१४४८-१५१५ ई.) कृत धर्म साहित्य १४ छोटे-बड़े ग्रंथों में निबद्ध है जिनकी भाषा संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश व बुन्देलखंडी देशी भाषा का मिश्रण है जिसे समझना आज दुरूह हो गया है। इन ग्रंथों के अनन्य अध्येता, बहु भाषाविद् स्व. ब्र. जयसागर जी महाराज ने प्रस्तुत शब्द कोश में इन १४ ग्रंथों के लगभग १२०० शब्दों के गूढ़ार्थ प्रचलित हिदी भाषा में सरल कर दिए हैं जिससे अब इस सत् साहित्य का पारायण करना स्वाध्याय प्रेमियों के लिए सुगम हो गया है। इस शब्द कोश का प्रकाशन स्व. श्रीमंत सेठ भगवानदास जी के जन्म जयन्ती समारोह (१० अक्टूबर, २००० ई.) के सुअवसर पर किया गया है।

४. समाधि शतक : रचनाकार आचार्य पूज्यपाद स्वामी, भाषा टीका- स्व. ब्र. शीतल प्रसाद जी; प्र.- श्री महावीर प्रसाद जैन, स्वतंत्रता सेनानी, संयोजक-श्री दि. जैन साहित्य प्रकाशन समिति, ३३२, स्कीम १०, अलवर (राज.)-३०१००१; २००१; पृ. १६७; मूल्य- रु. १०/-

आचार्य पूज्यपाद स्वामी (५वीं शती विक्रम-पूर्वार्द्ध) विरचित तथा १०५ श्लोकों में 'समाहित 'समाधिशतक' (अपरनाम 'समाधितन्त्र') भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विरचित 'समयसार' के बाद जैन अध्यात्मदर्शन का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ माना जाता है। इसमें बहिरात्म दशा अर्थात् शरीरादि पर पदार्थ में ममत्वबुद्धि का त्याग करके अन्तरात्मा (भेद विज्ञानी) द्वारा अपने शुद्ध परमात्म स्वरूप को प्राप्त करने की विधि का निरूपण किया गया है। स्व. ब्र. शीतल प्रसाद जी ने सरल हिन्दी भाषा में इस महान अध्यात्म ग्रंथ की टीका की है। प्रकाशक संस्था ने कतिपय धर्मनिष्ठ श्रावकों के आर्थिक सहयोग से इसे प्रकाशित कर इसका मूल्य लागत का भी मात्र एक तिहाई रखा है, जिसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है। ग्रंथ नित्य स्वाध्याय करने योग्य है।

५. जैन दर्शन की कहानियां - भाग २१ : सम्पादक- श्री कांती मूथा; प्र.- जैन प्रकाशन, ३१ गुलजार चौक, पाली (मारवाड़) राज.-३०६४०१; पृ. -६६; मूल्य रु. १५/-

आकर्षक सचित्र आवरण युक्त इस पुस्तिका में १३ जैन धर्म कथा प्रसंगों को (५ को धारावाहिक कथाओं के रूप में तथा ८ को स्वतंत्र लघु कथाओं के रूप में) व एक प्रेरक बोध कथा को प्रस्तुत किया गया है। इनके 'अतिरिक्त अंडे, मांसाहार व कत्लखानों के संबंध में कतिपय तथ्य उपलब्ध किए गए हैं। कथाओं के कथा वस्तु, उत्कंठा, मनोरंजकता आदि आवश्यक घटकों का उल्लेख करते हुए संपादकीय लेख में बताया गया है कि धर्म कथाओं में 'सद्‌गुणों की प्रेरणा' भी एक अन्य अनिवार्य तत्व माना गया है।

पुस्तिका में संगृहीत धर्म कथाओं का आधार प्राचीन श्वेताम्बर कथा साहित्य है।

धर्म कथाओं के संकलन में यदि तर्क युक्त प्रसंगों का ही वर्णन किया जाय तो अधिक श्रेयस्कर होगा क्योंकि युवा मन चमत्कार आदि पर कम ही विश्वास कर पाता है। 'कृत्या राक्षसी का कुचक्र' कथा कुछ ऐसी ही है । यदि धर्माराधन से सब उपद्रवों का निवारण हो जाया करता तो अनेक महामुनियों को जो घोर उपसर्ग सहन करने पड़े, जिनसे उनका शरीरान्त तक हो गया, वह न होता। कृष्ण कथा में सत्यभामा के मथुरा नगरी में स्वयंवर का उल्लेख किया गया है। उस समय मथुरा में कंस राज करता था पर न तो सत्यभामा कंस की पुत्री थी न मथुरा की कोई और राजकुमारी और न ही उस समय उसका श्रीकृष्ण के साथ विवाह हुआ। कृष्ण भी उस समय केवल १३-१४ वर्ष के ही रहे होंगे। उपरोक्त कतिपय अपवादों को छोड़कर कथाओं का प्रस्तुतिकरण सुन्दर, सरस व शिक्षाप्रद है।

६. सर्वोदयी जैन धर्म और उसकी मौलिकता पर लोकमत : प्रस्तुति श्री ज्ञानचंद खिन्दूका; प्र.- दि. जैन महासमिति राजस्थान अंचल, चाकसू का चौक, चाकसू का मंदिर, जौहरी बाजार, जयपुर- ३०२००३; २००१; पृ.-२४; मूल्य रु.५/-

जैन धर्म वैदिक हिन्दू धर्म से भिन्न एक स्वतंत्र मौलिक प्राचीन धर्म है जो प्राग्वैदिक श्रमण संस्कृति का सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण अंग है। जैन धर्म की मौलिकता एवं सार्वभौमिकता पर संक्षेप में तथ्यात्मक प्रकाश डालते हुए इस लघु पुस्तिका में विद्वान प्रस्तोता जी ने इसके समर्थन में प्रख्यात दार्शनिकों, इतिहासज्ञों एवं अन्य विद्वानों के अभिमत संग्रहीत कर प्रस्तुत किये हैं। जो राजनेता व अन्य लोग जैन धर्म को वैदिक-हिन्दू धर्म की ही एक शाखा मानकर जैन धर्म को अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता दिए जाने का विरोध करते आ रहे हैं, वे इस लघु पुस्तिका का परिशीलन कर अपनी भ्रांति दूर कर सकते हैं।

७. अचल गच्छ का इतिहास : ले. डॉ. शिवप्रसाद; प्र.-पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई.टी.आई, करौंडी, वाराणसी-२२१००५, २००१; पृ.२१२; मूल्य रु. २५०/-

८. गच्छ का इतिहास- भाग-१; खंड-१; लेखक, प्रकाशक वही, २००१; पृ. ३२८, मूल्य रु. ५००/-

श्वेताम्बर मूर्ति पूजक सम्प्रदाय में गच्छों का अभ्युदय ११वीं शताब्दी से माना जाता है तथा गच्छों का इतिहास ही बाद की सदियों का इस सम्प्रदाय का इतिहास है। अचल गच्छ एवं तपागच्छ इस सम्प्रदाय के दो महत्वपूर्ण गच्छ हैं। प्रस्तुत इतिहास ग्रंथों के लेखन में विद्वान लेखक द्वारा सभी उपलब्ध साहित्यिक- पुरातात्विक साक्ष्यों यथा प्रतिमालेख, ग्रंथ-प्रशस्तियां, लिपिकार की प्रशस्तियां, पट्टावलियों आदि का पूरा उपयोग किया गया है। अचल गच्छ के इतिहास ग्रंथ में उक्त गच्छ की उपशाखाओं के इतिहास पर तथा गच्छीय मुनिजनों के साहित्यावदान पर भी प्रकाश डाला गया है।

तपागच्छ के इतिहास के प्रथम भाग के इस प्रस्तुत प्रथम खंड में प्रारंभ से लेकर बीसवीं

शताब्दी तक की तपागच्छीय आचार्य परम्परा तथा उक्त गच्छ की विभिन्न शाखाओं का इतिहास दिया गया है।

ये दो ग्रंथ इतिहास लेखन के सभी मानकों को पूरा करते हैं तथा संग्रहणीय हैं।

९. जैन तीर्थ मथुरा : ले. श्री रामजीत जैन एडवोकेट; प्र. गदेलिया जैन धर्मार्थ ट्रस्ट, नया बाजार, लश्कर, ग्वालियर व अन्य; अक्टूबर २००१; पृ.६६; मूल्य रु. २०/-

समीक्ष्य पुस्तक में मथुरा के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व, यमुना तट के प्रसिद्ध जैन नगर एवं तीर्थ आदि पर प्रकाश डालते हुए चौरासी सिद्धक्षेत्र परिचय एवं क्षेत्र पूजन दिए गए हैं। विद्वान लेखक ने चौरासी सिद्धक्षेत्र को अन्तिम केवली भगवन्त श्री जम्बू स्वामी की निर्वाण भूमि के रूप में इसे सिद्ध क्षेत्र माना है और क्षेत्र कमेटी भी ऐसा ही घोषित करती है, किन्तु जम्बू स्वामी संबंधित समस्त प्राचीन साहित्य में राजगृह के विपुलाचल पर्वत से उनके मोक्ष गमन का वर्णन किया गया है, यथा अपभ्रंश भाषा में वीर विरचित 'जंबू सामिचरिउ' वि.सं. १०७६, प्राकृत भाषा में मुनि गुणपाल विरचित 'जम्बू चरित्र', १३वीं शती वि. तथा संस्कृत में पं. राजमल जी कृत 'जम्बू स्वामी चरित्र' (वि.सं. १६३२) में जम्बू स्वामी के शिष्य विद्युच्चर आदि ५०० मुनियों के द्वारा घोर उपसर्ग सहकर यहां से स्वर्गगमन करने का ही केवल वर्णन किया गया है। श्री चौरासी सिद्धक्षेत्र कमेटी को इसकी खोज करानी चाहिए कि जम्बू स्वामी के चौरासी मथुरा से मोक्ष गमन की अनुश्रुति का कब से प्रचलन हुआ तथा उसका क्या मूलाधार है।

१०. भगवान महावीर की परम्परा एवं समसामयिक संदर्भ : ले. - डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी; सम्पा.-डॉ. सुदीप जैन; प्र. त्रिलोक उच्च स्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान; प्र.सं.-२००१; पृष्ठ-१६१; मूल्य रु. २००/-

समीक्ष्य ग्रंथ कोटा मुक्त विश्वविद्यालय की पी.एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया शोध प्रबंध है। विद्वान लेखक- डा. त्रिलोकचंद कोठारी ने राजस्थान के एक अति साधारण ग्रामीण परिवार में जन्म लेकर राजस्थान में एक प्रमुख औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने का कीर्तिमान स्थापित करने वाले, मात्र चौथी कक्षा तक की विद्यालयी शिक्षा प्राप्त/अति व्यस्त औद्योगिक कर्म क्षेत्र के बीच दीर्घकालीन अध्यवसाय व साहित्य की भूमिका के साथ अपने ७४ वर्ष की वय में एक उच्चकोटि का शोध प्रबंध प्रस्तुत कर विद्या एवं अध्ययन के क्षेत्र में एक अनन्य कीर्तिमान स्थापित कर दिया है जो आश्चर्यजनक कीर्तिमानों की सूची में दर्ज किये जाने योग्य है।

सात खण्डों में विभक्त समीक्ष्य ग्रंथ में जैन धर्म के विशाल परिवेश को थोड़े में समेटने का प्रयास किया गया है। जैन धर्म की प्राचीनता तथा भगवान महावीर पर्यन्त तीर्थंकरों की परंपरा पर प्रकाश डालते हुए महावीरोत्तर युग में जैनाचार्यों की परम्परा का आधुनिक युग तक विस्तार से वर्णन किया गया है तथा उनके द्वारा रचे गए मूल एवं टीका ग्रंथों का उल्लेख किया गया है, मध्ययुगीन भट्टारकों का परम्परापोषकाचार्यों के नाम से वर्णन किया गया है, ६वीं सदी तक के कवियों, साहित्यकारों, गृहस्थ पंडितों के अवदान सहित २०वीं सदी के कतिपय प्रमुख आचार्यों,

उपाध्यायों का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त दि. जैन महासभा, परिषद, महासमिति आदि सामाजिक संस्थाओं व उनकी उल्लेखनीय गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय, जैन जातियों का परिचय देने के उपरान्त विश्व भर में जैन धर्म के इतिहास एवं वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है तथा आधुनिक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं आदि की जानकारी दी गई।

इस युग के प्रमुख पंडित साहित्यकारों का भी उल्लेख किया गया है। उनमें इस युग के महान मिशनरी, शास्त्रोद्धारक-पत्रकार-साहित्यकार ब्र. शीतल प्रसाद जी का नामोल्लेख भी न होना खटकता है।

केवल दिगम्बर आम्नाय की दृष्टि से लिखे गए इस ग्रंथ में गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया है जो स्तुत्य है। ग्रंथ संग्रहीय है।

– अजित प्रसाद जैन

११. ज्ञानायनी : प्रधान सम्पादक- डॉ. शीतलचंद्र जैन, जयपुर व डॉ. रमेशचंद्र जैन, बिजनौर; प्र.- प्राच्य श्रमण भारती, १२/ए, निकट जैन मंदिर, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१; १७ जून २००१; पृ. २६७+२० सजिल्द; मूल्य रु. २००/-

कोलकाता में २.११.१९४४ को गठित अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की स्वर्ण-जयन्ती के ६ वर्ष पश्चात प्रकाशित यह सचित्र भव्य स्मारिका तीन खण्डों में है। प्रथम खण्ड 'इतिहास एवं प्रगति पथ' में सन् १९४५ से २३.२.२००१ तक हुए विद्वत्परिषद् के २० अधिवेशनों में पारित प्रमुख प्रस्तावों एवं उनके क्रियान्वयन का विवरण है। इन छप्पन वर्षों में विद्वत्परिषद् में क्या-क्या उतार-चढ़ाव आये इसका लेखा जोखा इसमें है।

परिषद से जुड़े विद्वानों की गरिमा का दिग्दर्शन कराने वाले विभिन्न विद्वानों के आलेख 'विद्वान एवं विद्वत्परिषद्' नामक द्वितीय खण्ड में तथा परिषद् के अधिवेशनों में तत्कालीन अध्यक्षों द्वारा दिये गये भाषण 'अतीत का परिदृश्य' नामक तृतीय खण्ड में संकलित हैं। विद्वत्परिषद् में अभिरुचि रखने वालों के लिये यह स्मारिका पठनीय व संग्रहणीय है।

१२. स्वाध्याय पद संग्रह : प्र. श्री शान्तिलाल वनमालीदास सेठ फाउंडेशन, जयनगर, बैंगलोर; २१.५.२००१; पृ. १६५; मूल्य स्वाध्याय।

श्री शांतिलाल वनमालीदास सेठ की पावन स्मृति में श्रीमती दया बहन शांतिलाल सेठ परिवार ने मुमुक्षु समाज के स्वाध्याय, चिंतन व मनन अर्थ इस पुस्तक का संकलन व प्रकाशन किया है। मंगल-पाठ, स्तुति-पाठ, पूजन-पाठ, आलोचना-पाठ, भक्ति-पाठ (हिन्दी व गुजराती) और स्वाध्याय-पाठ नामक सात खण्डों में विभक्त इस 'स्वाध्याय पद संग्रह' में श्री सेठ और उनके परिजनों में प्रिय रहीं प्राचीन-अर्वाचीन ८१ रचनाएं संकलित हैं। संकलन नित्योपयोगी है।

१३. 'प्रेरणा' बाबू जय कुमार जैन स्मृति ग्रन्थ : सम्पादक प्रा. नरेन्द्र प्रकाश जैन व अन्य; प्र. श्री शौरीपुर बटेश्वर दि. जैन सिद्धक्षेत्र कमेटी व आगरा के श्रद्धालुगण; प्र. २०००; पृ. २६४–१६ सजिल्द।

१० मई, १९९३ ई. को ४९ वर्ष की अल्पवय में जीवन में काफी कुछ कर, संसार से कूच कर जाने वाले बाबू जयकुमार जैन सुहागनगरी फिरोजाबाद के एक प्रतिष्ठित औद्योगिक घराने में लाला मनीराम जी की नौ संतानों में द्वितीय पुत्र थे। कुशल व्यवसायी होने के साथ-साथ वह कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता, धर्मपरायण, दानशील और हंसमुख स्वभाव के कारण अपने नगर तथा बाहर समाज में काफी लोकप्रिय रहे। प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थ में ५ खण्ड हैं, जिनमें विशिष्ट महानुभावों के आशीर्वचन-शुभकामनााएं, इष्ट-मित्रों और स्वजनों के श्रद्धा-सुमन स्वरूप संस्मरण, फिरोजाबाद के जैन वैभव पर ६ आलेख, आगरा एवं उत्तरांचल का जैन धर्म को अवदान पर ७ लेख तथा जैन दर्शन, जैनाचार्य, इतिहास, साहित्य, पर्यावरण और शिक्षा विषयक १३ लेख समाहित हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ व्यक्ति विशेष की स्मृति तक ही न सिमटकर पाठकों की इतर ज्ञानवृद्धि का भी साधन बना है।

१४. जैन स्तोत्र साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन : प्रस्तोत्री-साध्वी डॉ. हेमप्रभा 'हिमांशु'; प्र. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, पीपलिया बाजार, ब्यावर-३०५९०१; अगस्त २००१; पृ. ३८४+२० सजिल्द; मूल्य रु. २००/-

प्रस्तुत ग्रन्थ विदुषी साध्वी जी द्वारा जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया शोध-प्रबंध है। पांच अध्यायों और चार परिशिष्टों में संयोजित इस शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में स्तोत्र-साहित्य की भारतीय परम्परा और जैन दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है, द्वितीय अध्याय में प्राकृत, संस्कृत, प्राकृत-संस्कृत मिश्रित और अपभ्रंश भाषाओं में रचित जैन स्तोत्रों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में उनकी आगम के आलोक में, चतुर्थ में काव्य शास्त्रीय पक्ष से तथा पंचम में उनमें समाहित दार्शनिक तत्वों की दृष्टि से उनकी समीक्षा की गई है। परिशिष्ट (ख) में कतिपय अनूठे स्तोत्र संकलित किए गए हैं। कृति काव्य रसिकों और प्रबुद्ध नागरिकों को आनन्दित करेगी

१५. दो पल : रचयिता श्री गिरीश चंद्र 'पंगु'; प्र.- भावना प्रकाशन, 'जोशी निकेतन', २५० राजेन्द्र नगर, १४वां मार्ग, लखनऊ-२२६००४; २०००; पृ. १६१+१४ सजिल्द; मूल्य रु. १००/-

अपने अनुज की अंत्येष्टि पर उत्पन्न श्मशान वैराग्य के परिणामस्वरूप संवेदनशील 'पंगु' जी ने जीवन के बचे हुए पलों का उपयोग करते हुए स्वान्तः सुखाय इस दार्शनिक काव्यकृति की रचना की है। वर्ष के बारह मासों को ध्यान में रखते हुए १२ सोपानों में प्रत्येक में १००-१०० पद के हिसाब से १२०० पद उन्होंने प्रस्तुत काव्यकृति में संजोये हैं। प्रत्येक पद में 'दो पल' की अनुगूंज है। काव्य रसिकों और अध्यात्म व दर्शन में रुचि रखने वालों को यह कृति आनंदित करेगी।

१६. व्यंग्य तरंग : रचयिता श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'; प्र.- श्रीमती पद्मा सक्सेना, 'पद्म कुटीर', सी-२७, बसंत विहार, अलीगंज हाउसिंग स्कीम, लखनऊ-२२६०२४; १९९८; पृ. ४८; मूल्य रु. ३०/-

समाज में बढ़ रही विसंगतियों और विद्रूपताओं तथा चरित्र और व्यवहार की टूट रही मर्यादाओं से उद्वेलित हो विविधवर्णी साहित्य के सशक्त सर्जक एवं संवेदनशील रचनाकार श्री

राजेश जी ने प्रस्तुत कृति में चोट से विराम तक १०८ छन्दों में अपने मनोभावों की व्यंग्य-तरंगिणी अजस्र प्रवाहित की है। इसमें बीच- बीच में हास्य का पुट है और मीठी चुटकियां भी ली गई हैं। कवि ने इस कृति में दो दोहे और उनके अनन्तर दो तुकान्त पंक्तियां जोड़ छह पंक्तियों वाले एक नये छन्द का विधान किया है।

कृति को पढ़ मन में ये भाव प्रस्फुटित हुए-

मानवीय संवेदना को बना गले का हार।
बहायी है व्यंग्य की अलग अपनी धार।।
हँसाते, चुटकी लेते और करते हैं चोट।
परिवेश में अपने जहाँ दिखता है खोट।।
'व्यंग्य-तरंग' करते पेश राजेश'।
पैनी रहे लेखनी उनकी हमेश।।

१७. हम हिंदी, बोलें हिन्दी : रचनाकार-इंजीनियर-कवि राजीवकांत जैन; सौजन्य सूत्र- श्री प्रमोद चंद्र सहगल, मंडल रेल प्रबंधक, राजकोट मंडल, पश्चिम रेलवे; अक्टूबर २००१; पृ. २२+६; मूल्य रु. ७५/-

राजभाषा 'हिन्दी' में कार्य करने के प्रति लगन एवं निष्ठा के प्रतीक स्वरूप अर्पित यह काव्य-संकलन तीन खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड 'देश की ओर' में जहां रचनाकार ने देश-भक्ति-भावना को अभिव्यक्ति दी है वहीं वर्तमान विसंगतियों के प्रति अपने हृदय की कसक को भी मुखरित किया है। द्वितीय खण्ड 'प्रेम की डोर' उसके युवा मन की कोमल भावनाओं को स्पर्श कर रहा है, और तृतीय खण्ड 'भीतर होती भोर' में वह अपने आपको टटोलता हुआ अध्यात्म की ओर उन्मुख हो चला है। जैसा कि कवि ने स्वकथन में स्वीकारा है, ये रचनाएं देश, समाज और उसके आस- पास नित्य हो रही हलचलों का उसके संवेदनशील मन पर पड़ रहे प्रभावों का प्रतिफल है।

विचारोत्तेजक, रस-प्रवाहिणी रचनाओं का यह संकलन हिन्दी जगत में अपना उचित स्थान पायेगा, यह निःसंदेह है। इस प्रतिभासम्पन्न युवा रचनाकार के उज्ज्वल भविष्य की शुभकामना इन पंक्तियों के साथ-

आस तुमसे हैं लगाये, कदम तुम्हारा बढ़ता जाये।
काव्य-प्रतिभा होवे निखर, आनन्द पाठक-मन पाये।।

- रमाकान्त जैन

समाचार विमर्श

शिखर जी पहाड़ पर डकैतों द्वारा लूटपाट -

दि. ३ सितम्बर, २००१ को श्री पार्श्वनाथ टोंक मंदिर जी में रात्रि के समय मंदिर का द्वार अन्दर से बंद कर श्रद्धालुजन जब णमोकार मंत्र का अखण्ड पाठ कर रहे थे, तो १० सशस्त्र लुटेरों ने बाहर पहरा दे रहे सुरक्षा गार्ड को मंदिर जी को द्वार खुलवाने के लिए विवश किया। गार्ड की आवाज सुनकर जैसे ही पाठ कर रहे लोगों ने दरवाजा खोला, सशस्त्र लुटेरे मंदिर जी में घुस आए तथा उन्होंने भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा रखी हुई दान पेटी को तोड़कर उसमें जमा हुई करीब रु. ५०,०००/- की राशि को लूट लिया, तथा श्वेताम्बर समाज द्वारा रखी गई दान पेटी को तोड़कर उसमें जमा राशि को भी लूटकर ले गए। सभी लुटेरे करीब २५ से ३० वर्ष की आयु वाले छोटे कद के सांवले रंग के नवजवान थे जो स्थानीय बोली ही बोल रहे थे।

इसके कुछ ही दिन पूर्व मधुबन में स्व. इलायची मती माताजी द्वारा निर्मित भगवान शीतलनाथ मंदिर से भी कुछ मूर्तियों की चोरी हुई है तथा दि. २२ अगस्त की रात्रि में डकैत कल्याण निकेतन के मंदिर की गोलक उठा ले गए और २८ अगस्त की रात्रि में चौबीसी टोंक बाहुबली मंदिर में घुसकर गुप्त भंडार का ताला तोड़कर राशि उड़ा ले गए।

इन घटनाओं की रिपोर्ट पुलिस में कर दी गई है और लुटेरों की सरगर्मी से तलाश की जा रही है। **(तीर्थ वंदना, सितम्बर २००१)**

जैन मंदिरों, तीर्थक्षेत्रों से मूर्तियों, बहुमूल्य स्वर्ण–रजत उपकरणों तथा दान पेटिकाओं में जमा राशियों की चोरी के समाचार आए दिन पढ़ने में आते हैं तथा पुलिस भी सरगर्मी से तलाश करती है पर कदाचित् ही १० प्रतिशत से अधिक मामलों में अपराधियों को पकड़ने में सफलता मिली हो। हमें तो इसका एक ही विकल्प समझ में आता है कि पर्वत पर टोंक मंदिरों में दान पेटिकाएं रखी ही न जाएं तथा यात्रीगण जो भी दान दें, मधुबन में विभिन्न कोठियों में जमा कराकर रसीद प्राप्त कर लें तथा मधुबन के मंदिरों में भी यदि दान पेटिकाएं रखी जायें तो उनके प्रतिमास या और भी कम अवधि में जिम्मेदार व्यक्तियों के समक्ष खोले जाने की पक्की व्यवस्था होनी चाहिए। वीतराग जिनेन्द्र देव के मंदिरों में बहुमूल्य स्वर्ण–रजत उपकरण चढ़ाने की प्रथा का कोई तुक ही नहीं है, यह तो केवल दातार का वैभव प्रदर्शन मात्र है, इस प्रथा को समाप्त किया जाना चाहिए तथा नई मूर्तियां यदि केवल पाषाण की दीर्घ आकार की ही प्रतिष्ठित की जाएं तो उनके चोरी जाने की संभावनाएं अत्यल्प हो जाएंगी। श्री सम्मेद शिखर जी पर तो यात्रियों के लूटे जाने के समाचार प्राप्त होते रहे हैं। तीर्थक्षेत्र पर नवीन मंदिरों, धर्मशालाओं आदि के निर्माण पर हम चाहे जितना

धन लगा दें किन्तु यदि सुरक्षा की स्थिति में सुधार नहीं होता तो क्षेत्र के विकास का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

महासभा ने महत्वपूर्ण निर्णय लिये-

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की प्रबंधकारिणी समिति की दि. २८-२६ जुलाई, २००१ को लखनऊ में श्री निर्मल कुमार जी सेठी की अध्यक्षता में सम्पन्न बैठक में कुछ निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए-

"१. चतुर्विध संघ से निवेदन किया गया कि जिस मंदिर में जो पूजा पद्धति-तेरहपंथ/बीसपंथ चल रही है, उसके विरुद्ध कोई मार्ग दर्शन नहीं दें ताकि तेरहपंथ व बीसपंथ के बढ़ते हुए मतभेद समाप्त हो जाएं। **पूज्य साधु वृंदों से भी निवेदन किया गया कि मंदिर में प्रचलित पूजा पद्धति को बदलने के लिए दबाव न बनाएं।**

२. श्रमण शिथिलाचार की रोकथाम के अभिप्राय से पूज्य साधु वृन्दों से अपेक्षा की गई कि वे

(१) एकल विहार न करें,

(२) मंदिर, आश्रम, मान स्तंभ, पाठशाला आदि के निर्माण कार्यो में स्वयं या अपने संघस्थ त्यागी या संघ संचालक/संचालिका आदि के माध्यम से चल रही प्रवृत्तियों से अपनी इस दुर्लभ पर्याय को मलिन न होने दें।

(३) ख्याति-लाभ पूजादि की चाह से स्वयं को विरत रखते हुए लौकिक क्रियाओं में अनुरक्त न हों।

(४) अपने साथ किसी भी अकेली महिला को नहीं रखें तथा सूर्यास्त के बाद उनसे किसी प्रकार का संपर्क न रखें।

(५) मूलाचार में निहित साधु योग्य उपकरणों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के संसाधनों के प्रवेश से संघ को एवं स्वयं को बचाएं।

(६) इस प्रकार की यंत्र-मंत्र की पुस्तकें नहीं लिखें जिनमें हिंसात्मक प्रयोग करने का निर्देश हो अथवा खून आदि पीने की बात लिखी हो।

सम्पूर्ण समाज से भी निवेदन है कि उनके यहाँ जब-जब साधुओं संतों का आगमन हो तब-तब उनके द्वारा इन बिन्दुओं के परिपालन की प्रेरणा करें। समाज में बढ़ते शिथिलाचार पर अंकुश लगाना जैन संस्कृति की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है।"

महासभा के उपर्युल्लिखित निर्णय सराहनीय हैं तथा यदि इनका सही भावना के साथ पालन हो जाए तो समाज में तेरहपंथी- बीसपंथियों के बीच कटुता में अवश्य ही कमी आनी चाहिए तथा मुनि/आर्यिका संघों में द्रुत गति से पांव पसारते शिथिलाचार पर प्रभावी रोक लगेगी। यद्यपि आज भी हमारे बीच संत शिरोमणि

आचार्य विद्यासागर जी महाराज, आचार्य धर्मभूषण जी महाराज (जिनके संघ में स्त्री प्रवेश तथा पिच्छि कमण्डलु व शास्त्र के अतिरिक्त अन्य परिग्रह का सर्वथा निषेध है) आदि कतिपय संत विद्यमान हैं जो निर्दोष साध्वाचार का आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं तथापि ऐसे मुनि/आर्यिकाओं की भी कमी नहीं है जिन्होंने अपने पवित्र पूज्य वेश को यश–ख्याति व अटूट धन–परिग्रह अर्जन का माध्यम ही बना लिया है। कुछ ने तो अपने दुष्कृत्यों से जैन धर्म को उपहास का पात्र बना दिया है तथापि धर्म भीरू समाज उपगूहन के नाम पर उनके अनाचार–दुराचार पर भी पर्दा डालता रहा है।

श्रमण संघों में शिथिलाचार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने तथा मुनि/आर्यिका को परिग्रहवान एवं सुविधा भोगी बनाने के मुख्य दोषी तो हमारे अंध श्रद्धालु श्रावक ही हैं जो अपनी धर्म निष्ठता व सम्पन्नता के प्रदर्शन के लोभवश या उनकी तंत्र–मंत्र–सिद्धि– चमत्कार–मायाचार से प्रभावित होकर और अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए उन्हें उचित–अनुचित सभी प्रकार की सुविधाएं जुटाने तथा उनके आदेश/संकेत अनुसार धन लुटाने को तत्पर रहते हैं।

महासभा को चाहिए कि वह इन निर्णयों को बड़े–बड़े आकर्षक पोस्टरों पर अंकित कराकर अपनी इकाइयों के माध्यम से प्रत्येक मंदिर व चातुर्मास स्थल पर प्रमुखता के साथ लगवाने की व्यवस्था करें। महासभा इकाइयों को स्थानीय पंचायतों को भी प्रेरित करना चाहिए कि वे समाज की आम सभा आहूत कर इन निर्णयों के अनुमोदन के साथ इनके अनुपालन का संकल्प करें।

महासभा–प्रबंधकारिणी कमेटी की इसी बैठक में सर्वसम्मति से पारित एक अन्य प्रस्ताव द्वारा यह भी घोषित किया गया कि हम जैन धर्मावलंबियों की मातृ भाषा प्राकृत है। इस प्रस्ताव की क्या सार्थकता या उपादेयता है, हम अपनी अल्पबुद्धि से समझने में असमर्थ हैं। यह सही है कि जैन धर्म का समस्त प्राचीनतम साहित्य प्राकृत भाषा (अर्द्ध–मागधी व शौरसेनी) में निबद्ध है तथा इसके अध्ययन–अध्यापन की समुचित व्यवस्था की महती आवश्यकता है। पर यह वह भाषा है जो आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व तक (आंचलिक अन्तरों सहित) जन–जन की बोलचाल की भाषा थी तथा जिसका स्थान शनैः शनैः अपभ्रंश ने तथा तदुपरांत हिंदी की आंचलिक बोलियों ने ले लिया। आज प्राकृत एक मृत भाषा है जो देश के किसी भी भाग में किसी भी परिवार में नहीं बोली जाती तथा जिसे कुछ विशेषज्ञ विद्वानों को छोड़कर कोई नहीं समझ पाता। मातृ भाषा तो जन–जन के दैनिक व्यवहार में आने वाली बोलचाल की वह भाषा होती है जिसे शिशु परिवार में छोटे–बड़े सबको बोलते देख–सुनकर स्वतः बिना किसी प्रयास के, बिना व्याकरण के किसी ज्ञान के बोलना सीख जाता है। हम चाहेंगे कि महासभा के विज्ञजन इस प्रस्ताव की सार्थकता को स्पष्ट करें।

तीर्थंकर वाटिका-

वन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा 'आपरेशन ग्रीन अभियान' के अंतर्गत 'तीर्थंकर वाटिका' शीर्षक से भगवान महावीर स्वामी के भव्य चित्र सहित एक फोल्डर प्रकाशित किया गया है। चौबीसों तीर्थंकरों ने किसी न किसी वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए ही केवलज्ञान प्राप्त किया है। इस फोल्डर में सभी तीर्थंकरों के केवली वृक्षों के संस्कृत नाम, हिन्दी नाम तथा वैज्ञानिक नाम देते हुए जैन धर्मस्थलों पर केवली वृक्षों के रोपण की प्रेरणा की गई है। फोल्डर में ऐसे आठ केवली वृक्षों के सुन्दर चित्र भी प्रकाशित किए गए हैं।

सुझाव अत्युत्तम है। केवली वृक्षों के रोपण से निःसन्देह हमारे तीर्थस्थलों के महत्त्व में अभिवृद्धि होगी तथा सभी तीर्थक्षेत्र कमेटियों को चाहिए कि वे सभी तीर्थंकरों के (तथा विशेष रूप से अपने क्षेत्र से संबंधित तीर्थंकर महाप्रभु के) केवलज्ञान वृक्ष का रोपण अपने क्षेत्र पर भगवान महावीर के २६००वां जन्मोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में अवश्य करें। वृक्ष पर एक पट्टिका भी लगाएं जिसमें संबंधित तीर्थंकर का नाम (केवलज्ञान की तिथि सहित) तथा वृक्ष के नाम का उसके औषधीय गुणों सहित उल्लेख हो। हमारा यह भी सुझाव है कि इस तीर्थंकर वाटिका में तीर्थंकरों के दीक्षा-वृक्षों का भी रोपण किया जाय। क्योंकि सभी तीर्थंकरों ने किसी न किसी वृक्ष के नीचे ही दीक्षा ली थी। अखिल भारतवर्षीय तथा आंचलिक तीर्थक्षेत्र कमेटियों को भी परिपत्र द्वारा सभी तीर्थक्षेत्र कमेटियों को इस ओर प्रेरित करना चाहिये।

इस सुन्दर फोल्डर का आलेख श्री वी. के. जैन, सहायक वन रक्षक, मेरठ द्वारा तैयार किया गया है। हम श्री जैन का इस उत्तम सुझाव के लिये अभिनन्दन करते हैं।

आचार्य प्रतिमाओं की स्थापना–

"बड़वानी (म.प्र.)- आ. सन्मतिसागर म. के अन्तर्गत हो रही प्रभावना में आ. श्री आदिसागर अंकलीकर म. के जन्म दिवस २१ अगस्त को पार्श्वगिरि पर वेदी शुद्धि की गई तथा २२ अगस्त को आचार्य आदिसागर, महावीर कीर्ति तथा विमलसागर जी की प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा की गई-- इन प्रतिमाओं के विराजमान होने से अच्छी प्रभावना हुई-- तथा मनीषी वर्ग, श्रेष्ठिगण एवं साधुओं ने अपनी विनयांजलि अर्पित की---।"

(करुणादीप, १ अक्टूबर, २००१)

आचार्यों/मुनियों की तदाकार प्रतिमाओं की विधिवत प्राण प्रतिष्ठा कर जिन मंदिर की वेदी में विराजमान करना बीसवींशती के उत्तरार्द्ध की ही देन है तथा इस प्रथा का प्रचलन भी विशेषकर अंकलीकर जी की परंपरा के साधुओं की प्रेरणा से ही हो रहा है। कदाचित् वे अपने गुरुओं की प्रतिमाओं को जिनमदिरों की वेदियों में विराजमान कर तथा जिन प्रतिमा के समान उनकी आरती

पूजा अभिषेक का रिवाज डालकर उन्हें (तथा स्वयं को भी) अमर करना चाहते है।

देवगढ़ के मध्ययुगीन मूर्तिकला वैभव में उपाध्याय परमेष्ठी की भी एक मूर्ति प्राप्त हुई है पर वह केवल प्रतीक स्वरूप है किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। वैसे भी आजकल के साधुओं में कदाचित् ही कोई भावलिंगी मुनि है (और कौन है इसे भी केवल अवधिज्ञानी महामुनि ही बता सकते हैं। जो इस काल में होते नही।)।

इन साधु प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा के क्या अर्थ हैं, हम जैसे अल्पज्ञों की सामान्य बुद्धि के लिए अगम्य है। क्या इसका आशय उन दिवंगत आचार्यों की आत्मा को उनकी मूर्ति में अवतरित करना है ? विज्ञ पाठक कृपया प्रकाश डालें।

— अजित प्रसाद जैन

समाचार विविधा

महाराष्ट्र में भी अल्पसंख्यक मान्यता-

कर्नाटक व मध्यप्रदेश के बाद अब महाराष्ट्र सरकार ने भी राज्य में जैन समुदाय को अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता प्रदान कर दी है।

भ. महावीर विश्वविद्यालय की स्थापना-

भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म महोत्सव वर्ष को मनाने के लिए गठित की गई बिहार प्रदेश की राज्य समिति की मुख्यमंत्री श्रीमती राबड़ी देवी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई बैठक में भगवान महावीर विश्वविद्यालय की स्थापना की मंजूरी दे दी गई। इसके पूर्व भगवान महावीर की जन्म स्थली वासोकुण्ड (वैशाली) स्थित प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान में दि. ६ अप्रैल २००१ को भगवान महावीर की २६००वीं जन्म जयन्ती के पावन प्रसंग पर 'भगवान महावीर की अहिंसा' विषय पर आयोजित विद्वत् संगोष्ठी में स्थानीय सांसद प्रो. (डॉ०) रघुवंश प्रसाद ने भी घोषणा की थी कि वासोकुण्ड में भगवान महावीर विश्वविद्यालय की स्थापना की जायगी।

अब जैन मंदिर भी सिमी के आतंकी घेरे में-

कानपुर महानगर में साम्प्रदायिक दंगा फैलाने में लिप्त पाए गए सिमी संगठन ने अब मेरठ जनपद में भी अपने जौहर दिखाने शुरू कर दिए हैं। पुलिस सूत्रों के अनुसार कांधला कस्बे में स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में जब स्थानीय समाज के मंत्री व अन्य श्रद्धालु जन प्रातः पूजा अर्चना के लिए गए तो उन्हें कुछ पर्चे मिले जिनमें आपत्तिजनक टिप्पणियों के साथ मंदिर जी को तीन सप्ताह के भीतर बम से उड़ा देने की चेतावनी दी गई थी।

देश में पहला राजकीय जैन संग्रहालय-

भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्मोत्सव वर्ष में उत्तर प्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग ने एक जैन संग्रहालय और शोध संस्थान स्थापित करने का निर्णय लिया है। यह संग्रहालय मथुरा में स्थापित किया जायेगा, जहां, 'अभिलेखीय साक्ष्य के अनुसार' भगवान महावीर स्वामी की सर्वाधिक प्राचीन मूर्ति व जैन स्तूप प्राप्त हुए हैं और जो अंतिम केवली भगवन्त जम्बूस्वामी के दीर्घ सान्निध्य के कारण जैन संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। इस संग्रहालय हेतु राज्य सरकार ने ३६ लाख रुपये का प्राविधान वर्तमान वित्तीय वर्ष के आय-व्ययक में किया है और उसमें से १० लाख रुपये की वित्तीय स्वीकृति जारी भी की जा चुकी है। संग्रहालय के सुचारु संचालन हेतु एक ट्रस्ट का गठन किया गया है जिसमें पदेन अध्यक्ष जिलाधिकारी मथुरा और पदेन सचिव राजकीय संग्रहालय मथुरा के निदेशक रक्खे गये हैं। यह जैन संग्रहालय मार्च २००२ तक कार्य करना प्रारंभ कर देगा, ऐसी आशा है।

यह उल्लेखनीय है कि मथुरा का वर्तमान राजकीय संग्रहालय सन् १९३४ से कलेक्ट्रेट परिसर से स्थानान्तरित होकर मथुरा के डेंपीयर नगर में निर्मित नये भवन में कार्यरत है। यहां पर जैन मूर्तिकला की लगभग एक हजार मूर्तियां संगृहीत बताई जाती हैं, किन्तु स्थानाभाव के कारण बहुत कम का ही प्रदर्शन हो पाता है। 'जैन कला' के नाम से वहां मात्र एक गैलरी है जिसमें कुछ जैन मूर्तियों के साथ कुषाणकालीन अन्य मूर्तियां भी प्रदर्शित हैं। अतः शेष जैन कलाकृतियों, अभिलेखों, आयाग पट्टों आदि के सुचारु प्रदर्शन हेतु इस 'जैन संग्रहालय' की स्थापना की जा रही है। इसमें राज्य संग्रहालय लखनऊ से भी भगवान महावीर स्वामी की एक प्राचीन मूर्ति भी ले जाकर प्रदर्शित की जायेगी। वर्तमान संग्रहालय की 'जैन गैलरी' यथावत रहेगी। यूं तो देवगढ़ आदि में जैन संग्रहालय लघु स्तर पर विद्यमान हैं जो जैन समाज द्वारा अपने संसाधनों से संचालित हैं, तथापि मथुरा का यह जैन संग्रहालय देश का प्रथम राजकीय जैन संग्रहालय होगा। इस संग्रहालय हेतु मथुरा कलेक्ट्रेट परिसर के उस भवन का चयन किया गया है जहां सन् १८७४ ई. में मथुरा के तत्कालीन कलेक्टर श्री एफ. एस. ग्राउस ने मौजूदा राज्य संग्रहालय की स्थापना की थी।

नवीन फाउन्डेशन-

अपने ज्येष्ठ पुत्र नवीन की प्रथम पुण्य तिथि पर दि.१० नवम्बर को लखनऊ में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने सूचित किया कि नवीन सेठी की स्मृति में नवीन फाउन्डेशन के स्थापना की गई है जिसके अन्तर्गत समाज सेवा के कार्य किए जाएंगे तथा पांच हजार रुपए प्रतिमाह जिलाधिकारी सीतापुर के माध्यम से असहाय लोगों को पहुँचाए जाएंगे।

अभिनंदन

•**श्री बी. रमेश कुमार गदिया (जैन)** को उनके शोध प्रबंध **'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन का प्रभाव'** पर बैंगलोर विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

•वरिष्ठ साहित्यकार एवं शाकाहार प्रचारक तथा मासिक 'तीर्थंकर' के सम्पादक **डॉ. नेमिचंद जैन, इंदौर** (अब दिवंगत) को शाकाहार के प्रचार हेतु भगवान महावीर फाउंडेशन, चेन्नई द्वारा पांच लाख रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा की गई।

•**डॉ० रविन्द्र कुमार जैन, चेन्नै,** को उनकी हिन्दी और जैन साहित्य की सेवा हेतु श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी द्वारा **'श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति पुरस्कार सन् २०००'** प्रदान किया गया।

•दिल्ली की शिक्षिका **कु. चन्द्रकान्ता जैन** को इस वर्ष शिक्षक दिवस पर राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

•२६ सितम्बर को मैसूर में जैन विद्या के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान, मैसूर एवं मद्रास विश्वविद्यालयों में जैन विद्या विभाग के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष रहे **डॉ. एम. डी. वसन्तराज** को उनके ७५ वर्ष पूर्ण करने की पूर्व संध्या पर मारबर्ग यूनिवर्सिटी, जर्मनी के प्रोफेसर डॉ. जयेन्द्र सोनी द्वारा सम्पादित अभिनंदन ग्रन्थ **'वसन्तगौरवम्'** मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. हेगड़े द्वारा भेंट किया गया।

•२ अक्टूबर को भुज (कच्छ) में 'वीरायतन विद्यापीठ' के शिलान्यास समारोह में **श्री भूपतभाई कामाणी (कोलकाता), श्री हजारीमल बांठिया (कानपुर)** और **श्री नवनीत भाई सेठ (मुम्बई)** को **'समाज-रत्न'** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। २६ सितम्बर को **श्री बांठिया जी** को राजस्थानी अकादमी द्वारा **"डाक्टर ऑफ राजस्थानी लिटरेचर"** की मानद उपाधि से भी सम्मानित किया गया।

•३ अक्टूबर को राजकोट में 'संसदीय राजभाषा समिति' के अध्यक्ष श्री रामरघुराज चौधरी और सदस्य श्री बाल कवि वैरागी द्वारा **श्री राजीव कान्त जैन,** सीनियर डिवीजनल इंजीनियर, पश्चिमी रेलवे, के काव्य संकलन **"हम हिंदी, बोलें हिन्दी"** का लोकार्पण किया गया तथा उन्हें पुरस्कृत किया गया और ३१ अक्टूबर को राजकोट में देशभक्त नागरिक संस्थान की ओर से उनका सार्वजनिक अभिनंदन किया गया।

•४ नवम्बर को **डॉ. भागचन्द्र जैन "भागेन्दु" (दमोह)** को अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा वर्ष २०००-२००१ के **"सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार"** पुरस्कार (राशि- रु.३१०००) से सम्मानित किया गया।

•**डॉ एस.पी.पाटील (सांगली)** को उनके समीक्षात्मक ग्रन्थ **'चामुण्डराय पुराणः एक अध्ययन'** हेतु कन्नड साहित्य परिषद् बैंगलौर द्वारा वर्ष २०००-२००१ का **'चामुण्डराय पुरस्कार'** घोषित हुआ।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धि के लिये शोधादर्श परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना प्रेषित करता है।

शोक संवेदन

♦१८ जुलाई, २००१ को जर्मन भाषा के उत्कृष्ट विद्वान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली में ६० वर्षीय प्रोफेसर **डॉ. सुमत प्रकाश जैन** का अकस्मात निधन हो गया।

♦८ अगस्त को इंदौर में वरिष्ठ साहित्यकार एवं शाकाहार प्रचारक तथा 'तीर्थंकर' मासिक एवं साप्ताहिक 'वीणा' के कुशल सम्पादक ७४ वर्षीय **डॉ. नेमिचंद जैन** का अकस्मात हृदयगति रुकने से निधन हो गया। जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका अनन्य योगदान था।

♦अगस्त मास में ही के.जी. एम.सी., लखनऊ के नेत्र विभाग के **डॉ. जितेन्द्र कुमार** अग्रवाल का असामयिक निधन हो गया। वह एक कुशल नेत्र सर्जन थे।

♦५ सितम्बर को उदयपुर में विख्यात प्रतिष्ठाचार्य **पं. फतहसागर जी शास्त्री** का देहावसान हो गया।

♦६ अक्टूबर को लखनऊ में भाषा विज्ञान के विशिष्ट विद्वान **डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल** दिवंगत हो गए।

♦१७ अक्टूबर को गोरखपुर में ८३ वर्षीय होम्योपैथिक चिकित्सक **डॉ. चन्द्र प्रकाश अग्रवाल** का स्वर्गवास हो गया।

♦नवम्बर में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. के संस्थापक आजीवन सदस्य, कर्मठ समाज सेवी वयोवृद्ध श्री सुकुमार चन्द्र जैन, मेरठ हमारे बीच नहीं रहे।

♦१८ नवम्बर को दिल्ली में वयोवृद्ध समाजसेवी श्री उम्मेदमल पाण्ड्या का निधन हो गया।

उपर्युक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति शोधादर्श परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शन्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है और उनके स्वजनों–परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

समिति के महामंत्री **श्री अजित प्रसाद जैन**, पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ ने अपने पूज्य पिताजी श्री पारसदास जी की ४५वीं पुण्यतिथि पर **शोधादर्श** को रु. ५१ तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती धनवती देवी की ८वीं पुण्यतिथि पर **शोध पुस्तकालय** को रु. ५१ भेंट किये।

शोधादर्शः पाठकों की दृष्टि में

❑नव प्रभात की अरुणिमा लिये **शोधादर्श–४४** प्राप्त हुआ। 'गुरु गुण कीर्तन' में श्री रमाकान्त जैन ने मधुव्रत प्राणी की भांति विभिन्न धर्मग्रन्थों में सन्निहित भगवान महावीर की अर्चना के शब्द–सुमनों का मधु–मकरन्द एकत्र कर एक मधुच्छत्र का निर्माण किया है, जिसकी मधुता तथा सुरभि से पाठक का मन पुलकित हो उठता है। पृष्ठ ४४ तथा ४५ पर पद्मश्री राम नारायण उपाध्याय तथा डॉ. प्रभाकर माचवे के संक्षिप्त तथा सारगर्भित लेखों में भगवान महावीर के विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सुन्दर वर्णन हुआ है। डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा के लेख में वर्तमान समाज की दुर्दशा पर क्षोभ व्यक्त करते हुए दिशा–निर्देश भी किया गया है। डॉ. श्रेयांस कुमार जैन ने ठीक ही कहा है कि परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं हो सकता।

डॉ. शशिकान्त का लेख 'वीर–शासन का जन्मस्थान राजगृह' चिर परिचित शोधपूर्ण शैली में लिखा गया है। इसमें लेखक का परिश्रम, पर्यटन और शास्त्र ज्ञान उभर कर सामने आया है। अन्य स्तम्भ भी जैन धर्म, दर्शन तथा आस्था से अभिन्न रुप से जुड़े हुए हैं।

– डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

❑**शोधादर्श** मैं बराबर रुचिपूर्वक पढ़ता हूँ। आपकी समीक्षात्मक टिप्पणियां सटीक, सचोट, यथार्थपरक होती हैं। अंक ४४ में भाई श्री शशिकान्त जी का 'वीरशासन का जन्मस्थान' महत्वपूर्ण तथा खोज प्रधान लेख है। उन्होंने केवल यात्रा नहीं की, बल्कि इतिहास–शोधक के रूप में उस क्षेत्र की इंच–इंच पृथ्वी को नाप डाला है। 'वर्द्धमान महावीर–गुरुगुणकीर्तन' में संस्कृत, हिन्दी के स्तुति छन्द कंठस्थ करने योग्य हैं। महावीर विषयक अन्य सामग्री भी पठनीय है। 'समाचार–विमर्श' में शास्त्रि परिषद के प्रस्तावों को पढ़कर सिद्धांत या मान्यताओं के नाम पर बच्चों का खेल ही लगा। समझ में नहीं आता कि सोनगढ़ या जयपुर का विरोध करके हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं? मतभेद शालीन और उच्च स्तर की भाषा में भी व्यक्त किये जा सकते हैं। क्या हम विश्व में प्रकाशित, परस्पर विरोधी, श्रृंगारपरक, उत्तेजक साहित्य नहीं पढ़ते हैं? केवल आगम–आगम की रट लगाने से क्या होने वाला है? और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये सारे मतभेद पंडितवर्ग तक ही सीमित रहते हैं। आम समाज तो पूजा–पाठ और परम्पराओं को निभाने में ही धर्म की प्राप्ति मानता है। आर्यिकाओं की आदर–आकांक्षा भी अनोखी बात है। साधुत्व स्वीकारने के बाद भी मानकषाय की प्रबलता–आखिर कहाँ रहा साधुत्व? शास्त्र के शब्दों से, व्याख्या से क्या आदर मिलता है? मुझे तो लगता है कि हमारे कतिपय या बहुसंख्य श्रमणों में

नियमों के पालन की एक अनचाही कुण्ठा काम करती है। जरा भी नियम में ढील हुई कि आकाश पाताल एक हो जाता है।

इस वृद्धावस्था में भी आप समाज को आदर्श (आइना) दिखा रहे हैं। बड़ी बात है!

— जमनालाल जैन, सारनाथ (वाराणसी)

❑**शोधादर्श** में उत्कृष्ट एवं तथ्यपूर्ण लेख पढ़ने को मिलते हैं। पिछले अंक में जस्टिस एम.एल. जैन का लेख 'समय शाह' पढ़ा जो श्री तारण स्वामी के ग्रन्थ का सूक्ष्म अध्ययन कर लिखा गया है।

— डालचंद्र जैन, पूर्व सांसद, सागर

❑**शोधादर्श** अंक ४३ व से ४४ उत्सुकता में पढ़े। अंकों का सामग्री चयन, प्रस्तुतिकरण एवं स्थायी स्तम्भ, सभी कुछ अद्‌भुत मार्गदर्शक, प्रेरक और ज्ञानवर्धक है। जैन–जैनेतर मनीषियों के ठोस विचारों की प्रस्तुति से गागर में सागर जैसी सामग्री पाठकों को सहज प्राप्त हो गई है। उसके लिये आप और सम्पादक मण्डल बधाई के पात्र हैं। अंक ४४ दिशाबोधक होने के साथ ही यह व्यक्त करता है कि वीतरागता को समर्पित समाज एवं उसकी संस्थाओं की राग–द्वेषात्मक, एवं विध्वंसक प्रवृत्तियाँ कितनी घातक हैं और उनका वीतरागता के आदर्श से कहीं भी मेल नहीं है, वस्तुतः वे विरोधी ही हैं। शोध–खोज एवं निर्भय टिप्पणियों के लिए आप बधाई के पात्र हैं। जस्टिस एम.एल.जैन भी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने १५वीं शताब्दी के महान आध्यात्मिक संत श्री तारणतरण स्वामी की अमूल्य कृति **ममल पाहुड** का महत्व 'समय शाह' में दर्शाकर अध्यात्म–जिज्ञासुओं की पिपासा मिटाने में योगदान दिया। **शोधादर्श** में ऐसी महान विभूतियों की कृतियों से समाज को अवगत कराते रहें जिनसे निर्मल चित्त/माध्यस्थ भाव वाले महानुभावों का कल्याण हो सके।

— डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

❑**शोधादर्श–४४** नये कलेवर में बहुत अच्छा लगा। भगवान महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक के अवसर पर भगवान महावीर के जीवन व उनके दर्शन से सम्बन्धित सम्पूर्ण सामग्री पढ़कर बहुत सी बातों की जानकारी हुई। 'चिन्तन कण'– अपनी परम्पराओं को न भूलें, समवशरण व जन्म नगरी कुण्डलपुर– के अन्तर्गत अत्यन्त सरल भाषा में बहुत उपयोगी जानकारी प्रदान की गई है। 'गुरुगुण–कीर्तन' में वर्द्धमान महावीर के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों की रचनाओं की प्रशंसनीय प्रस्तुति की गई है। स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का 'जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्' लेख पढ़कर बहुत सुखद अनुभूति हुई। सम्पादकीय 'जयति श्रुत देवता' तथा 'वीर–शासन

का जन्मस्थान राजगृह' आदि सभी लेखों की प्रस्तुति प्रशंसनीय है। वस्तुतः यह एक संग्रहणीय अंक है।

— रोहित कुमार जैन, लखनऊ

❑**शोधादर्श** ४३ व ४४ दोनों अंक जानकारी से भरे पुरे हैं। वर्द्धमान महावीर के संबंध में सभी श्लोक मंगलाचरण या स्तवन के रूप में दिये यह प्रयास प्रशंसनीय है। 'महावीर काल के विभिन्न संप्रदाय' लेख उस समय के संप्रदायों की जानकारी करा देता है।

— उ. र. गहाणकरी, अमरावती

❑**शोधादर्श** ४३ व ४४ तन्मयतापूर्वक देखे। 'गुरुगुणकीर्तन' का कथ्य सदैव आकर्षक व सुरुचिपूर्ण रहता है। भगवान महावीर पर विभिन्न महापुरुषों, आचार्यों, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, संत विनोबा भावे, आचार्य रजनीश, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, आचार्य तुलसी, श्री हीरालाल 'कौशल' व आचार्य विद्यानन्द जी की दृष्टि सर्वथा स्तुत्य है। २६००वें वीर जयन्ती वर्ष पर सम्पादकीय तथा श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जी का 'Life of Lord Mahavira' व इसी प्रकार डॉ. धर्मचन्द्र, डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, डॉ. शशिकान्त, डॉ. प्रभाकर माचवे के लेख सारगर्भित हैं। श्री नीरज जैन का संस्कृति संरक्षण विषयक लघु निबन्ध प्रामाणिक व सटीक है। वस्तुतः दोनों अंक पठनीय, संग्रहणीय तथा प्रशंसनीय हैं। शोध की सम्पूर्ण गरिमा लिये सम्पादन सचमुच सर्वथा उच्चस्तरीय व प्रेरणास्पद है।

— मोतीलाल जैन 'विजय, कटनी'

❑नये कलेवर वाले अंक लगते तो आकर्षक हैं, परन्तु मुझे तो पूर्व रूप अधिक मौलिक लगता है। वह भीड़ में एकाकी लगता था जबकि अब यह भीड़ का एक अंश। प्रस्तुति में पूर्वानुसार साहस अभी भी विद्यमान है। उचित संकेत होते हैं पर फिर भी जो चल रहा है उसमें बदलाव नहीं आ पाता है, यह एक विवश स्थिति है।

—राजेन्द्र नगावत, इन्दौर

❑अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के बाद भी **शोधादर्श**–४४ हाथ लगते ही आद्योपान्त सम्पूर्ण पढ़कर ही छोड़ने का मन हुआ। 'जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्' आदरणीय डॉ. ज्योति प्रसाद जी का अच्छा शोधपरक लेख है। सम्पादकीय श्रुतपञ्चमी पर प्रेरणास्पद स्पृहणीय है। बगड़ा जी का लेख विचारणीय व मननीय है। डॉ. श्रेयांस जी का लेख 'परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं' खूब भाया।

'समाचार विमर्श' हमेशा की तरह कुछ कर गुजरने की शिक्षा देने वाला रहा। श्री सम्मेदशिखर की घटना स्तब्ध करने वाली है। परन्तु क्या इसी प्रकार की घटनायें

कहीं आकर चली गई हैं? हाँ, धर्म के ठेकेदारों के कान में जुआं तक नहीं रेंगा है– वे अपनी कुंभकर्णी निद्रा में वातानुकूल में शयन कर रहे हैं फिर सुधार होगा कहाँ से। राष्ट्र गुरु की उपाधि और उनके ये हाल पढ़कर रोना आ गया। नवरात्रि विधान नयी बात नहीं है। तंत्र–मंत्र, ज्योतिषी क्रियाकाण्ड कतिपय साधु–संतों में फलता– फूलता व्यापार है।

'कितनी प्रभावना, कितनी अवमानना' ने तो हमारी सारी पोल ही खोल दी। दिल्ली कार्यक्रम की संसद से तुलना करना प्रधानमंत्री जी की बहुत बड़ी मीठी गाली है जैन समाज को। **शोधादर्श** समाज में जागृति लाने का स्तुत्य प्रयास कर रहा है।

– पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवां (सागर)

❑**शोधादर्श** अच्छा निकल रहा है।

– प्रा. सौ. लीलावती जैन
सम्पादिका– धर्ममगंल, पुणे

❑**शोधादर्श** आपके कुशल सम्पादन में नियमित निकल रहा है। बधाई!

– लालचन्द्र जैन, टिकैतनगर

❑**शोधादर्श** जुलाई २००१ की प्रायः सभी रचनाएं न केवल पठनीय हैं, वरन् मननीय भी हैं। महावीर स्वामी के सन्देश यदि हमारे आचरण के विषय बन जाते हैं, तो इस लोक की सारी विसंगतियां स्वतः समाप्त हो जायेंगी तथा उस लोक का मार्ग भी प्रशस्त हो जायेगा। अपने इस प्रकाशन के द्वारा आप ऐसे स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर रहे हैं जो उदात्त जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाला है।

– डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर

❑जुलाई २००१ का **शोधादर्श** सुन्दर व पठनीय सामग्री से पूर्ण है। महावीर स्वामी पथ–प्रदर्शक के रूप में सदैव मार्गदर्शन देते रहेंगे यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है। उन सम्बन्धी आलेखों आदि से प्रेरणा देने सम्बन्धी किया गया कार्य सराहनीय व बधाई योग्य है।

– मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

❑**शोधादर्श** ४४ आद्योपान्त पढ़ा। पृष्ठ १–६ पर वर्द्धमान महावीर का अलग–अलग विधा से सारभूत सामयिक गुणगान हृदयग्राही है। डॉ. ज्योति प्रसाद जी का वीरप्रभु शासन सम्बन्धी १७–७–५८ का लेख अभी जीवन्त है। पृ० १२–१५ पर जिनवाणी–केवलीवाणी की लिपिबद्धता के इतिहास का सही ज्ञान कराया गया है। डॉ. शशिकान्त ने अपने लेख में राजगृह का विस्तृत विवरण सम्पूर्ण क्षेत्र प्रत्यक्ष

देखकर परिश्रम पूर्वक प्रस्तुत किया है। डॉ. श्रेयांस कुमार जैन का लेख 'परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं' शिथिलाचार के खिलाफ पहली बार सारभूत गजब का लेख है। चिन्तन कण 'अपनी पराम्पराओं को न भूलें' समीचीन है। यह भेष की बलिहारी है, भेष द्वारा करोड़ों की कमाई हो रही है। रमाकान्त भाई ने अपनी क्षणिकाओं में करारी चोट की है। **शोधादर्श** सत्य को उजागर करती है, किन्तु पचाना मुश्किल है। विद्वान ही आदर करते हैं ऐसी पत्रिकाओं का।

– महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, शाकाहार प्रचारक, नई दिल्ली

❑**शोधादर्श–४४** को आद्योपान्त अवलोकित कर अत्यन्त आनन्दानुभूति हुई। 'गुरुगुण–कीर्तन' में विभिन्न २६ छन्दों के माध्यम से वर्द्धमान महावीर की नीराजना हृदयग्राही है। सम्पादकीय 'जयतिश्रुत देवता' ज्ञान पर्व श्रुत पंचमी की उपयोगिता एवं महत्व व्यंजित कर सरस्वती साधकों को सचमुच उत्प्रेरित करता है। इस उपादेय अंक में डॉ. शशिकान्त का शोध लेख 'वीर–शासन का जन्मस्थान राजगृह', पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय का लेख 'अहिंसा के मूर्तस्वरुप', डॉ. प्रभाकर माचवे का आलेख 'वर्तमान युग में महावीर के उपदेशों की सार्थकता' तथा डॉ. परमानन्द जड़िया की कविता 'तीर्थंकर महावीर' अत्यन्त अच्छी लगी। मुख पृष्ठ के पीछे भगवान महावीर की गुप्तकालीन पाषाण प्रतिमा हमें वैशाली के उज्जवल अतीत में ले जाती है। संक्षेप में इस स्तरीय, उपादेय, पठनीय श्रेष्ठ अंक की प्रस्तुति के लिए साधुवाद और बधाई!

– डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, कोंच (जालौन)

❑**शोधादर्श–४४** में डॉ. शशिकान्त द्वारा 'राजगृह' पर शोधपरक विवेचन पढ़कर अत्यन्त हर्ष हुआ। तीर्थयात्रा का यथार्थ उद्घाटन कर विद्वान लेखक ने तीर्थयात्रा का सही निरूपण किया है। 'सोनागिरि' 'श्रमणगिरि' का अपभ्रंश है, यथार्थ जानकारी मिली। प्राचीन साहित्य में 'ऋषिगिरि' नाम की प्रसिद्धि भी सही प्रतीत होती है।

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन का लेख 'परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं', डॉ.सूरजमुखी जैन का आलेख 'परिग्रहपरिमाणव्रत– आज के संदर्भ में' तथा जस्टिस एम.एल.जैन का लेख 'समय शाह' हृदयग्राही हैं। श्री रमाकान्त की क्षणिकाएं अत्यन्त समयोपयोगी एवं मर्मस्पर्शी हैं। सारांशतः इस अंक में समाहित सभी लेख व काव्य रचनाएं ज्ञानवर्धक और रोचक हैं।

– पन्नालाल जैन 'लाल', रीवा

आवश्यक सूचना

वर्ष २००१ का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक अथवा ड्राफ्ट न भेजें। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

❑❑❑